अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन
बनाम
मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद)

व्यवहारात्मक जनवाद

ए. नागराज

प्रकाशक :
जीवन विद्या प्रकाशन
दिव्यपथ संस्थान
अमरकंटक, जिला अनूपपुर - 484886 म.प्र. भारत

प्रणेता एवं लेखक :
ए. नागराज
सर्वाधिकार प्रणेता एवं लेखक के पास सुरक्षित

संस्करण :
पूर्व संस्करण : 2002, 2009
मुद्रण : जनवरी 2017

सहयोग राशि : 200/-

जानकारी :
Website : www.madhyasth-darshan.info
Email : info@madhyasth-darshn.info

सदुपयोग नीति :
यह प्रकाशन, सर्वशुभ के अर्थ में है और इसका कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसका उपयोग एवं नकल, निजी अध्ययन के लिए उपलब्ध है। इसके अलावा किसी भी अर्थ में प्रयोग (नकल, मुद्रण आदि) करने के लिए 'दिव्यपथ संस्थान' अमरकंटक, जिला अनूपपुर (म.प्र.), भारत - 484886, से पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है। यह अपेक्षित है कि इन अवधारणों को दूसरी जगह प्रयोग करते समय इस ग्रन्थ का पूर्ण उद्धरण (संदर्भ) दिया जायेगा।

Good Use Policy :
This publication is for 'Universal Good' and has no commercial intent. It may be used and copied for personal study purposes. Any use (copy, reproduction, etc.) for any other purpose other than stated has to be compulsorily authorized beforehand in writing by 'Divya Path Sansthan'. Amarkantak, Anuppur, 484886 (India). It is expected that you provide the full reference of this book when using these concepts elsewhere.

विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्वरूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए.नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'' जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

   उपासना :- देवी देवताओं के संदर्भ में।

   कर्म :- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)।

   मनु धर्म शास्त्र में :- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।

   कर्म काण्डों में :- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्म काण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है ? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांङ्मय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान तथा परम्परा के अनुसार- ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोध गम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रुप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केंद्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात भी कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र सूत्र है।

सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रुप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना-आराधना-अर्चना-स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवा भावी तथा श्रम शील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि -

ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे ?

दूसरा प्रश्न -

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे ?

तीसरा प्रश्न -

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण ?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्गाता प्रमाण ?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण ?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न -

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा ?

संविधान में धर्म निरपेक्षता - एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता - एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र - शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट- नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है ?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्मानीय ऋषि-महर्षियों के सुझाव से -

(1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।

सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा-विचार-इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 घण्टे से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरुप संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व सहज रूप में रहना, होना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वांङ्मय ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र के रुप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़-चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रुप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई-'जीवन' रुप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के

उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

और

- प्राणपद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद
- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या, मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

प्राक्कथन

व्यवहारात्मक जनवाद नाम से यह प्रबंध मानव के कर कमलो में अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ। जनवाद का तात्पर्य मानव मानव से बातचीत करता ही है, संवाद करता ही है, वाद-विवाद करता ही है यह सबको पता है। यह सब यथावत रहेगा ही, तमाम प्रकार से होने वाली बातचीत का लक्ष्य दिशा को स्वीकृति पूर्वक, स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने के क्रम में मानव का उपकार होने की आशा समायी है। उपकार का तात्पर्य मानव लक्ष्य के अर्थ में, दिशा निश्चित होने से है। इसे लोकव्यापीकरण करने के उद्देश्य से यह पुस्तिका प्रस्तुत है।

हम मानव सदा से ही सुखी होना चाहते हैं। यह सबको कैसे उपलब्ध हो सकता है ? सोचने, समझने, स्वीकार करने अथवा मान लेने के आधार पर दो प्रकार के प्रयोग हो चुके हैं। पहला भक्ति विरक्ति से सुखी होने का प्रयास और प्रयोग लाखों आदमियों से सम्पन्न हुआ। दूसरी विधि सुविधा-संग्रह से सुखी होने के लिए अथक प्रयास करोड़ों मानव अथवा सर्वाधिक मानवों ने किया। इन दोनों विधियों से सर्वमानव का सुखी होना प्रमाणित नहीं हुआ। इसी रिक्ततावश इसकी भरपाई के लिए किसी विधि की आवश्यकता बन चुकी थी। इसी घटनावश उत्पन्न समाधान के लिए सह-अस्तित्ववादी नजरिया से ज्ञान, कर्माभ्यास और अनुभवमूलक विधि से अनुभवगामी पद्धति सहित प्रस्तुत हुए। मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद के अंगभूत यह व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत है।

जनवाद के मूल में आशा यही है, मानव अपने अधिकारों, दायित्वों, कर्तव्यों को समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रूपी लक्ष्य के लिए समझे, सोचे, निश्चय करे और कार्य व्यवहार में प्रमाणित करे। इसी शुभ कामना से इस प्रबंधन को प्रस्तुत किया है।

हर मानव सुखी होना चाहता है सुखी होने के लिए समाधान आवश्यक है। समाधान के लिए समझदारी आवश्यक है। समझदारी का मूल स्वरूप सहअस्तित्व दर्शनज्ञान, जीवन ज्ञान ही होना पाया जाता है। इसे लोकव्यापीकरण करने का आशा इस प्रस्तुति में समाया हुआ है।

हर मानव अपनी पहचान प्रस्तुत करना चाहता ही है । हर मानव की पहचान समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व रूप में ही पहचानना बनता है और पहचान कराना भी बनता है । इसी आधार पर पूरे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद को समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रूपी मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है । मेरा विश्वास है हर मानव ऐसे ही अध्ययन का स्वागत करेगा ।

यह पुस्तिका सर्वमानव शुभ के अर्थ में सम्प्रेषित है । सर्वशुभ के अर्थ में सहअस्तित्व स्वयं निरन्तर प्रभावशील है । सहअस्तित्व के वैभव में ही सम्पूर्ण मानव का शुभ समाया हुआ है । इस तथ्य का अध्ययन कराना उद्‌देश्य रहा है । हम स्वयं अध्ययन किये हैं । अतएव आपके सौभाग्यशाली वर्तमान के रूप में अनुभव करने के लिए सहायक होगा, ऐसा हमारा निश्चय है ।

यह प्रबंध मानव को समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य को भागीदारी रूप में प्रमाणित करने के लिए प्रेरक है । यह सार्थक हो, सर्वसुलभ हो, मानव कुल अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सदा-सदा प्रमाणित होता रहे । यही कामना है ।

ए. नागराज
प्रणेता-मध्यस्थदर्शन
(सह-अस्तित्ववाद)

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृ.क्र.
1	व्यवहारात्मक जनवाद क्यों ?	1-16
2	अभिनय और उसका परिणाम	17-26
3	व्यवहारात्मक जनवाद का स्वरूप (मानव व्यवहार)	27-57
4	व्यवहारवादी विचार की चर्चा	58-60
5	मानव का मूलरूप प्रवृतियों के आधार पर	61-76
6	व्यवहार - मानव परम्परा के साथ	77-95
7	व्यवहारवादी कार्यकलाप	96-129
8	जनचर्चा की आवश्यकता	130-142

अध्याय - 1

व्यवहारात्मक जनवाद क्यों ?

व्यवहारात्मक जनवाद क्यों ?

- ➤ **मानव भय, प्रलोभन एवं संघर्ष से मुक्ति चाहता है तथा आस्था से विश्वास का प्रमाणीकरण चाहता है ।**
- ➤ **मानव लाभोन्माद, भोगोन्माद से मुक्ति एवं विकल्प का स्पष्टता चाहता है।**
- ➤ **मानव शासन से मुक्ति एवं व्यवस्था का ध्रुवीकरण चाहता है ।**

सुदूर विगत से मानव परम्परा भय, प्रलोभन, आस्था, संघर्ष से गुजरती हुई देखने को मिलती है । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सर्वाधिक मानव संघर्ष को नकारते हैं । भय को नकारते हैं । कुछ लोग सोचते हैं, प्रलोभन और आस्था से छुटकारा पाना संभव नहीं है । कुछ लोग यह भी सोचते हैं कि प्रलोभन और आस्था में ही राहत है । कुछ लोगों का सोचना है कि इससे छुटकारा पाना जरूरी तो है, परन्तु रास्ता कोई नहीं है । इन सब स्थितियों में निष्कर्ष यही निकलता है कि भय, प्रलोभन, आस्था और संघर्षो से गुजरते हुए मानव परम्परा का रास्ता; राज्य और राजनैतिक, धर्म और धर्मनैतिक, अर्थ और अर्थनैतिक, शिक्षा-संस्कार सहज वस्तु पद्धतियों का निर्धारण, निष्कर्ष, उसकी सार्वभौमता, सार्थकताओं के अर्थ में देखने को नहीं मिली । इस लम्बे समय की यात्रा में मानव परम्परा में संस्कृति-सभ्यता का, विधि-व्यवस्था का, तथा आचार-संहिता का ध्रुवीकरण एवं निश्चयन नहीं हो पाया । यही जनचर्चा का मुद्दा है । इन सभी मुद्दों पर सार्थकतापूर्ण निश्चयन को जनचर्चा के सूत्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए इस ग्रन्थ का उद्घाटन हुआ है । इसमें सर्वशुभ का सारभूत अर्थ समाहित है ।

मानव परम्परा में राज्य, धर्म, अर्थ और शिक्षा-संस्कार सम्बन्धी सार्वभौम निष्कर्षों को पाने का प्रयास सदा ही रहा है ।

इसकी असफलता का एकमात्र कारण मानव को एक इकाई के रूप में देखने, समझने, अध्ययन क्रम में सजाने, व्यवहार, व्यवस्थागत कार्य-कलापों को साकार करने की दिशा में प्रयास नगण्य रहा है । हर समुदाय ने अपनी-अपनी संस्कृति, सभ्यताओं को मान्यताओं के आधार पर स्थापित कर लिया । इसीलिए सभी समुदायों की सांस्कृतिक अस्मिता समानान्तर रूप में प्रवृत्त हुई फलस्वरुप बारंबार टकराव की मुद्राएँ-घटनाएँ देखने को मिलती रही । जबकि अधिकांश मानव वाद-विवाद, झंझटों को नहीं चाहते हैं ।

परिस्थितियाँ इन तमाम घटनाओं के लिए बाध्य करती रहीं। कोई एक परम्परा अपनाया हुआ राज्य और धर्म अस्मिताएँ, टकराव की स्थिति निर्मित करती रहीं। उसी के साथ-साथ अन्य समुदायों का उलझना एक बाध्यता बनती रही है। इसी उलझन से सामरिक अस्मिता सर्वाधिक रूप में पुष्ट हुई। इसी के पक्ष में कोई भयभीत होकर, कोई प्रलोभित होकर इस घटना प्रवाह में भागीदार बनने के लिए इच्छा रखते रहे, और भागीदार होते भी रहे। इसका साक्ष्य यही है कि सामरिक कार्यकलाप में भागीदारी करने के लिए बहुत सारी प्रतिभाएँ उम्मीदवार होती ही हैं तथा भागीदारी निर्वाह करती ही हैं यह सर्वजन विदित तथ्य है। जनचर्चा में भी सामरिक वार्ताओं को प्रदर्शन-प्रकाशन के माध्यम से रोमांचक विधि से प्रस्तुत किया जाता है। ताकि पीढ़ी दर पीढ़ी सामरिक प्रवृत्ति स्वीकृत होती रहे, पुष्टित होती रहे। उल्लेखनीय है कि अधिकांश मानव युद्ध न चाहते हुए भी युद्ध वार्ता-चर्चा में उत्साहित होकर भाग लेते हैं। मानव में यह एक अन्तर्विरोधी विन्यास है। इसी प्रकार अन्तर्विरोधी मुद्दे के रूप में शोषण को कोई नहीं चाहता है, फिर भी अधिकांश जनमानस व्यापार चर्चा व लाभवादी विधाओं से उत्साहित होते हुए देखने को मिलते हैं।

इस बात से हर व्यक्ति सहमत होता है कि वह मानव ही है। किन्तु अपना परिचय वह किसी वर्ग या समुदायिक पहचान के साथ ही देता है। यह भी अन्तर्विरोध का जीता जागता उदाहरण है। आम जन-मानसिकता के गति, कार्य वार्तालाप के क्रम में यह भी देखने को मिलता है कि सर्व शुभ होने का कार्य राज्य, धर्म और शिक्षा में होना चाहिए। जबकि इन तीनों विधाओं में विशेष और सामान्य का प्रभेद बना ही है। (विशेष और सामान्य का तात्पर्य विद्वान-मूर्ख, ज्ञानी-अज्ञानी, बली-दुर्बली, धनी-निर्धनी के रूप में मान्यता है)। यह विशेषकर समुदायगत अन्तर्विरोध के रूप में देखने को मिलता है। जनचर्चा में यह भी सुनने को आता है कि शिक्षा-संस्कार आदि चारों परम्परा (शिक्षा संस्कार, राज्य, धर्म, व्यापार व्यवस्था) ठीक है और इस बात को स्वीकारा जाता है। परम्परा सहज विधि से हर मानव संतान किसी न किसी परिवार में समर्पित रहता ही है। जिसके फलस्वरुप परिवार के रूढ़िगत, स्वीकृत खान-पान, बोली, भाषा, रहन-सहन और व्यवहार मर्यादाओं को यथा संभव हर शिशु ग्रहण करता ही रहता है। इसके कुछ दिनों बाद किसी शिक्षण संस्था में भाई-बहनों, मित्रों-गुरूजनों के बीच जो कुछ भी सीखने को, सुनने को, समझने को, पढ़ने को मिलता है इन सबको हर बालक अथवा हर विद्यार्थी अपनी ग्रहणशीलता सहज विधि से ग्रहण करते हैं। युवा अवस्था को पार करते-करते किसी न किसी धर्मगद्दी, धर्मप्रणाली, धार्मिक रूढ़ियों को स्वीकार लेते हैं। इसी के साथ साथ किसी न किसी देश, राष्ट्र, संविधान और भाषा, जाति चेतना सहित अपनी

पहचान को सजाने के लिये हर युवा और प्रौढ़ व्यक्ति यत्न प्रयत्न करते ही हैं। इसके उपरान्त इस अवस्था तक जो कुछ भी स्वीकारा रहता है उसके प्रति अपनी निष्ठा को जोड़ते हैं। जिन-जिन मुद्दों को स्वीकारे नहीं रहते है उसमें उनकी निष्ठाएँ अर्पित नहीं हो पाती है। इसी कारणवश हर समुदाय में पीढ़ी दर पीढ़ी परिवर्तन की दिशा बनती रहती है। यही मानव परम्परा की विशेषता है। भौतिकता प्रधान दृष्टिकोण से, भोगवादी दृष्टि से मानव को भले ही जीव जानवर कहते हों, किंवा कह रहे हैं इसके बावजूद तथ्य यही है कि जानवरों में यथावत पिछली पीढ़ी के सदृश्य ही अगली पीढ़ी के कार्य-कलाप और प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। जबकि मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी में भिन्नताएँ व्यक्त होती ही रही हैं तथा विचार, कार्य, व्यवहार, सुविधा, संग्रह, उपभोग, बहुभोग आदि विधाओं में भी परिवर्तन होता ही आ रहा है। इसकी समीक्षा में पीढ़ी से पीढ़ी अधिकाधिक सुविधा संग्रह में प्रवर्तित होना देखा गया है। कटट्रवादिता अंधविश्वास और अन्य अर्थविहीन रूढ़ियों के प्रति पुनर्विचार करने के लिए प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक लोगों में उदय होती हुई देखने को मिलती हैं। इन्ही तथ्यों से पता चलता है, कि मानव जीव जानवरों से भिन्न है। भिन्नता का मूल स्रोत सर्व मानव में प्रकाशित कल्पनाशीलता-कर्म स्वतंत्रता ही है। विगत घटनाओं की स्मृतियों श्रुतियों के आधार पर हर व्यक्ति अपनी कल्पनाओं को दौड़ाने में समर्थ है ही, इसी क्रम में मानव हर घटना के साथ उचित अनुचित को समझने, औचित्यता के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाने, अनुचित के साथ नकारात्मक रवैया अपनाने के लिए अपनी कर्म स्वतंत्रता का प्रयोग करता ही है। यह सर्व मानव में सर्वविदित तथ्य है। इस धरती पर आदिकालीन मानव का भिन्न जलवायु में शरीर यात्रा आरंभ होना, सुस्पष्ट हो चुका है। विभिन्न जलवायु में पले विभिन्न रंग रूप के होने के कारण मानव से मानव की रूप रंग की विषमता, उसी के साथ भाषा की विषमता के संयोग से विरोधों का प्रदर्शन, असंख्य हिंसाओं के रूप में साक्षित है। प्राकृतिक भय, पशुभय, मानव में निहित अमानवीयता (हिंसा, शोषण, द्रोह, विद्रोह, प्रवृत्ति) का भय अर्थात अथ से इति तक भय के विभिन्न स्वरूपों को परिलक्षित किया गया है और हर व्यक्ति इन्हे परिलक्षित कर सकता है।

भिन्न-भिन्न मानव कुल और परम्पराओं का विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में आरंभ होना एक नियति सहज विधि है। इसी आधार पर ही भिन्न-भिन्न मानसिकता का होना स्वयं साक्षित है। इसे हर व्यक्ति अपनी संतुष्टि के लिए अथवा निश्चयन के लिए सर्वेक्षित कर सकता है। इसी मानसिकता के क्रम में, भय पीड़ित अथवा प्रताड़ित मानसिकता ही सर्वप्रथम व्यक्त होने, करने, कराने का अवसर और आवश्यकता समीचीन

रही है। इसका साक्ष्य आज भी हर भाषा में भय संबंधी कथन, कथा, परिकथा, तथा चर्चाओं के रूप में प्रकाशित होता हुआ दिखाई पड़ता है। साथ ही साथ अभयता की अपेक्षा हर पीढ़ी में रहती आयी है और हर पीढ़ी अभयता से परिपूर्ण होने में असमर्थ रहते ही आयी है। आदि मानव में एवं अत्याधुनिक मानव में इतना ही परिवर्तन दिखाई पड़ता है कि प्राकृतिक भय और पशुभय (क्रूर जानवरों का भय) का प्रभाव कम हो गया। जैसे जैसे ये भय कम हुए मानव में निहित अमानवीयता का भय पराकाष्ठा की ओर होना प्रकाशित हुआ। यहाँ उल्लेखनीय मुद्दा यही है कि युद्ध जैसे परम दुष्ट कृत्यों को विकास का आधार मान लेना, मनवा देना, अत्याधुनिक युग का दबाव और पीड़ा है।

क्रूरता, हिंसा और युद्ध मानसिकता :-

आदि मानव में भी घटनाओं के साथ तदाकार होना, कम से कम अनुकरण में प्रवर्तित होना, कल्पनाशीलता एवं कर्म स्वतंत्रता के योगफल की महिमा रही है। मानव परंपरा के आरंभिक काल में सर्वाधिक भौगोलिक परिस्थितियाँ इस धरती पर प्रकट होने एवं वनस्पति मानव जाति के विकास के अनुकुल रहना आज भी जनमानस में स्वीकृत होता है क्योंकि शनैः शनैः वन का शोषण व क्षरण मानव के हाथो होना आँकलित होता है। ऐसी वनस्थली में आदि मानव के सम्मुख वन, वन्य-पशु, प्राणी, हवा, जल, सूर्य प्रकाश पृथ्वी ही प्रथम नैसर्गिकता के रूप में समीचीन रहते रहे हैं। इन सभी ने मानव पर प्रभाव डाला। इनमें से हवा, जल, प्रकाश धरती की स्वीकृति और जंगल, वन्य प्राणी तथा उनसे संपन्न होने वाले क्रिया-कलाप की अस्वीकृति रही, फलस्वरूप वन्य प्राणियों के साथ हिंसक रवैया और वनस्थली को मैदान बनाने का रवैया मानव ने अपनाया। इसी क्रम में परिवार और ग्राम कबीलों में परिस्थितिजन्य मान्यता, रूढ़ियों को अपनी-अपनी भाषा विधि से अग्रिम पीढ़ियों में संप्रेषित करने का कार्य भी होता ही रहा। आदिकाल में भय के अलावा भाषा में वर्णन करने की कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके अलावा कोई चीज रही है - वह है क्रूर वन्य प्राणियों के साथ जूझकर मारने के उपरान्त उत्सव मनता ही रहा। उत्सव से आरंभ हुआ अलंकार और श्रृंगार वस्तुओं का उत्पादन और उपभोग। यह आज अत्याधुनिक युग में भी स्वीकृत होता ही है।

उक्त क्रम में स्वाभाविक रूप में हर परिवार, ग्राम व कबीले के साथ-साथ क्रम से जंगल युग के अनन्तर पाषाणयुग, पाषाणयुग के अनन्तर धातुयुग, धातुयुग के अनन्तर स्वचालित यन्त्रयुग, और विद्युत युग का उदय हुआ। पहले से ही वन को काट कर मैदान बनाने की कार्य विधि को मानव अपना चुका था। क्रम से उक्त युगों के उदय के साथ-

साथ खनिजों का दोहन, प्रौद्योगिकी प्रवृत्ति, संग्रह सुविधा की आवश्कता, भोग, अतिभोग, बहुभोग की दिशाओं में प्रसवित, प्रदर्शित हुई। उपरोक्त क्रम से सम्पूर्ण राज्य मानस में युद्ध और युद्धकला हर देश या राष्ट्र के अहमता और सम्मान का कारण बना। राज्य और धर्म कहलाने वाले सदा-सदा ही एक दूसरे के आगे-पीछे चलते रहे। इसी के साथ-साथ आस्थावाद का समावेश होता ही रहा।

आज की जनचर्चा में इन्ही मुद्दों का उद्घाटन है। प्रधानतः सामान्य जनमानस सुविधा-संग्रह के मुद्दे पर रोमांचित होता हुआ, उत्साहित होता हुआ देखने को मिलता है। सुविधा-संग्रह विधा में जिनकी कुछ पहुंच बन चुकी है, ऐसे लोगों में भोग, अतिभोग, बहुभोग रोमांचिकता का मुद्दा बना हुआ देखने को मिलता है। राजनेताओं में भी संग्रह सुविधा, भोग, अतिभोग की मानसिकता देश, राष्ट्र की अस्मिता नाम से युद्ध, शोषण और द्रोह के रूप में देखने को मिलती है। इस मुद्दे पर भी रोमांचित होने करने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं।

आज की स्थिति का निरीक्षण, परीक्षण करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि राज्य, धर्म, व्यापार में भागीदार सभी मानव सुविधा-संग्रह को छोड़कर दूसरा कुछ कर नहीं पा रहें हैं। इसलिए उक्त जगहों में भागीदारी करते हुए मानव ही अधिक योग्य माने जा रहे हैं। इन सबकी गम्यस्थली उल्लेखित बिंदु ही है। इसलिए अपेक्षा, कथन और कार्य में अन्तर्विरोध देखने को मिलता है। जैसे हर राजनेता मेहनत और ईमानदारी के उपदेश सार्वजनिक सभाओं में देते हैं। किन्तु साथ ही सभी विधि से अपने सुविधा-संग्रह को बनाने, बढ़ाने में ही लगे रहते हैं। धर्म नेताओं के सम्पूर्ण उपदेश का सार त्याग, वैराग्य, परोपकार के लिए प्रवर्तित होता है। इस मुद्दे पर भी उल्लेखनीय तथ्य उतना ही है जितना राजपुरूषों के संबंध में ऊपर कहा गया है। तीसरी गद्दी, व्यापार गद्दी है। व्यापार घोषित रूप में ही संग्रह-सुविधा में लगा रहता है, जबकि व्यापार का मूल प्रयोजन लोक-सुविधा, लोकोपकार है। इस प्रकार से कथनी-करनी की दूरियाँ इन तीनों गद्दीयों में देखने को मिलती हैं। ये सब जन चर्चा का आधार बिंदु है। चौथी गद्दी, शिक्षा गद्दी के रूप में पहचानी जाती है। आज तक शिक्षा में उन्नयन (विकास) के नाम से व्यवसायिक शिक्षा के रूप में ही शिक्षा का ढाँचा-खाँचा बना हुआ है। शिक्षा रूपी व्यवसाय भी व्यापार के रूप में ही अथवा व्यापार के सदृश ही सुविधा-संग्रह की ओर प्रवर्तित देखने को मिल रहा है। इन सब को देखकर कृषि में निष्ठा रखने वाले, परिश्रम में विश्वास रखने वालों में सुविधा-संग्रह की ओर प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। क्योंकि चारों गद्दियों में आसीन

उनके साथी-सहयोगियों का जलवा और रूतबा ही इनके लिए आदर्श रहा है। सर्वाधिक लोग आज भी कृषक और श्रमजीवी हैं तथा यही लोग, लोक सामान्य और आम जनता के नाम से जाने जाते हैं।

जनचर्चा में मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग का अनुसरण करने वाले सभी लोग समाहित रहते हैं। आज की स्थिति में जनचर्चा के सर्वाधिक मुद्दे सुविधा, संग्रह, भोग पर आधारित होतें हैं। संपूर्ण साहित्य, वांडमय, परिकथा, कथाओं व संचार माध्यम का वाचन-श्रवण भी इन्ही अर्थों में सुनने में आता है। वर्तमान के आदर्शों के आधार पर ही जनचर्चा होना देखा गया है। इसी के साथ तमाम अपराधिक घटनाएँ और बर्बरताएँ जनचर्चा के माध्यम से सुनने में आती हैं। उल्लेखनीय है कि उक्त सभी बातों को जनमानस सामान्य कार्यकलाप के रूप में स्वीकार कर रहा है। किन्तु अपराध, लूट-खसोट, छीना-झपटी जैसे कार्यों को स्वयं के साथ घटित होते हुए स्वीकार नहीं पाता है। घटित हुई घटना दोनों प्रकार से जनमानस चर्चा की वस्तु बनाती है। जैसे किसी देश-देश के साथ युद्ध होना या युद्ध के लिए प्रस्तुत होने वाले वक्तव्य, युद्ध का अंतिम परिणाम जिसमें किसी की हार जीत होती है, को कुछ लोग उचित ठहराते हैं, कुछ लोग अनुचित ठहराते हैं। उचित अनुचित ठहरातें समय यही लोकचर्चा में रहता है कि बड़ा अत्याचार किया था इसीलिए राज्य का पतन होना जरूरी था। दूसरे तरीके से कभी-कभी यह भी समीक्षा सुनने में आती है कि जो पराजित हुए वे मूर्ख थे इसीलिए हार गये। इसी प्रकार जीते हुए देश के संबंध में भी में उचित-अनुचित के रूप में जनमानस चर्चा करते ही हैं।

घटनाक्रम में किसी परिवार के साथ भी उचित अनुचित के रूप में इसी प्रकार गाँव, मुहल्ला में भी जनचर्चा होते हुए देखने को मिलती है। यह तो सर्वविदित है, कि सम्पूर्ण प्रचार तंत्र, अपराध और श्रृंगारिकता के अतिरिक्त और कोई ज्ञान वर्धन करा नहीं पा रहे है। शिक्षा के नाम से जो कुछ भी प्रचार करते हैं, वे सब न्यून प्रभावी रहते हैं, अपराधिक और श्रृंगारिक प्रभाव के सामने नगण्य हो जाते हैं।

जनचर्चा शिक्षा सहज मानसिकता, समुदाय परंपरा सहज मानसिकता और प्रचार माध्यमों की मानसिकताएँ प्रधान रूप में हर मानव पर प्रतिबिम्बित होती ही हैं। हर वर्तमान में इसका निरीक्षण, परीक्षण किया जा सकता है। मानवकुल अनेक समुदायों के रूप में दृष्टव्य है। समुदायों के बनने के मूल कारणों की ओर पहले ध्यान दिया जा चुका है। सभी समुदायों में संघर्ष और भय अस्वीकृत होते हुए भी इसकी चर्चा बार-बार देखने को मिलती है। इसके परिशीलन में यही पाया गया कि स्वीकृत होने वाले तथ्यों को चर्चास्पद

बनाने में परम्पराएँ असमर्थ रही हैं। जैसे हर मानव विश्वास पूर्वक जीना चाहता है। विश्वासपूर्वक जीने की चर्चा और चर्चा की मूल वस्तु उसकी प्रयोजनकारिता को परम्परा कोई दिशा नहीं दे पायी। यह व्यवहारिक होने के कारण व्यवहारात्मक चर्चा की अति आवश्यकता है। प्रकारान्तर से हर मानव की मानव के साथ और नैसर्गिकता के साथ जीने की स्थिति की कम से कम शरीर यात्रा पर्यन्त प्रभावित करने की स्थिति समीचीन रहती ही है। जबकि सभी चर्चाएं अलगाव-विलगाव की ओर ले जाती हुई देखी जाती हैं। अभी तक की चर्चा की निश्चित विभाजन रेखा भोगवाद और त्यागवाद है। ये दोनों व्यक्तिवादी होने के कारण अलगाव-विलगाव होने की मानसिकता और चर्चा मानव कुल में व्याप्त है। ऐसी व्यक्तिवादी अहमता को और कठोर बनाने के क्रम में अनेकानेक तरीके अपनाए गए ऐसे तरीकों में माध्यम अतिमहत्वपूर्ण रहा।

माध्यम परीकथा के रूप में प्रारंभ होकर वर्तमान स्थिति में दूर-गमन, दूर-श्रवण, पत्र-पुस्तिका, दूर-दर्शन, स्मारिकाएँ उपन्यास आदि नामों से जाने जाते हैं। यह सब सार संक्षेप में अपराध और श्रृंगारिकता का प्रचार ही है। इन प्रचारों के बौने आधार पर यह मानसिकता के लोग शिक्षा के लिए प्रस्तुत होने के पक्ष में दलीलें मानव के वार्तालाप में देखने को मिलती है। उसी क्रम में जितने भी दृष्टांत देखने को मिले हैं। उनके अनुसार अपराधिक और श्रृंगारिक प्रयासों में प्रवृत्ति देखने को मिली। इसका मूल कारण सकारात्मक अथवा व्यवहारात्मक चर्चा की वस्तु से हम वंचित व माध्यमों, शिक्षा, शासन व्यवस्था के दावेदार कहलाने वाले स्वयं रिक्त रहे हैं। इन सबके दिशाविहीन होने के फलस्वरुप यदि किसी दिशा की पहचान होती है तो केवल सुविधा संग्रह, भोग, अतिभोग, बहुभोग की ओर ही होती है। अन्यथा इससे असफल होने की स्थिति में विरक्ति-भक्ति की हो पाती है। इन तमाम प्रकार की नकारात्मक रोमांचक चर्चाओं के साथ-साथ केवल व्यक्तिवादी मानसिकता ही सघन होती हुई देखी गयी। दूसरी भाषा में व्यक्तिवादी अहमता बढ़ती गयी।

भय-भ्रान्ति से मुक्ति को चाहना और समाधान, समृद्धि सम्पन्न रहना, ये सब आकांक्षा के रूप में देखने को मिलता है। इसी के साथ-साथ उपकारी होने की आकांक्षा भी किसी न किसी अंश में होती है। सहयोगिता प्रवृत्ति शिशुकाल से ही देखने को मिलती है। यही वृद्धावस्था में भी किसी अंश में जीवित पायी जाती है। ऐसी सहयोगितावादी प्रवृत्ति का आशिंक रूप ही देश कालीय विधि से प्रायोजित होता हुआ देखने को मिलता है। ऐसी उपकार विधाओं का विविध राज्य और धर्म परम्परा में होना, प्रवृत्त रहना पाया

जाता है। इसी प्रकार एक समुदाय, दूसरे समुदाय; एक परिवार, दूसरे परिवार; एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिये उपकारी होने की बातें चर्चाओं में सुनने को मिलती हैं। कुछ घटनाएं भी देखने को मिलती है। इसका परिणाम किसी का किसी के साथ किया हुआ उपकार किसी दूसरे के लिए संकट के रूप में भी देखने को मिला। जैसे एक देश दूसरे देश के लिए सामरिक तंत्र वस्तुओं से उपकार करने की स्थिति में अन्य देश संकट की गुहार मचाता है। एक धर्म कहलाने वाले परम्पराओं द्वारा अपनी-अपनी जाति को बढ़ावा देने की कार्यवाहियों और मानसिकताओं से अपनी प्रसार प्रवृत्ति को अपनाने की स्थिति में दूसरा समुदाय संकटग्रस्त होता है। एक समुदाय परिवार, व्यक्ति अथवा देश शोषण पूर्वक सर्वाधिक धनार्जन कर लेता है, उस स्थिति में वे सब गुहार मचाते हैं जो असफल रहते हैं। यही आज की बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक गंभीर चर्चाओं की वस्तु रही है। इस प्रकार वर्तमान में जनचर्चाओं का मुद्दा अपराध, श्रृंगारिकता, गलती, राज्य, धर्म, अर्थ, संबंधी जटिलताएँ ही हैं।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सभी राज्य संविधान (लिखित-अलिखित) गलती, अपराध और युद्ध को रोकने की मानसिकता का ताना बाना है। इसके विपरीत जनचर्चाओं में इन्ही मुद्दों का सर्वाधिक प्रभाव होना पाया जाता है। जनचर्चा प्रवृत्ति के लिए अभी तक जितनी भी किताबें छपी हैं उनमें सर्वाधिक भाग इन्हीं प्रेरणाओं से अनुप्राणित होना पाया जाता है। इसी के साथ श्रृंगारिकता, भोग, बहुभोग, अतिभोग प्रवृत्तियाँ इनमें समायी रहती हैं। इसी प्रकार हमें देखने में पता लगता है कि जनसंघर्ष के लिए गलती, अपराध, युद्ध, शोषण, भोगवादी कार्य-कलाप ही मुख्य कारण है। मानव संघर्ष से ग्रस्त होने की स्थिति में राहत पाने के लिए श्रृंगारिकता, भोग, अतिभोगवादी मानसिकता का प्रयोग करता हुआ देखा जा रहा है।

प्रचलित रूढ़ी, मान्यता, कल्पना, आकांक्षा जो ऊपर स्पष्ट किये गये हैं, उनके आधार पर जनचर्चा और जनाकांक्षा का निर्धारण इन्हीं के पक्ष विपक्ष में होना बनता है। इन सभी चर्चाओं का सार यही है, जीना है, सुखी होना है, भय से मुक्त होना है, विपन्नता और प्रताड़नाओं से मुक्त होना है साथ ही साथ समृद्ध होना है। यही सब मानसिकता कल्पना के रूप में पहचान आने वाली आकांक्षाओं का हर मानव में परस्पर वार्तालाप, विचारणा, परिचर्चा, संवाद-वादों द्वारा किसी न किसी मान्यता के रूप में प्रतिबद्ध होना, उसी के आधार पर प्रवर्तनशील होना देखा गया है। वाद प्रवृत्ति हर व्यक्ति में काफी लंबी चौड़ी अर्थात विशाल होती है। योजना प्रवृत्तियाँ, वाद प्रवृत्ति से कम क्षेत्र में होना देखा

गया है। और योजना प्रवृत्ति से कार्य प्रवृत्ति और छोटी होती हुई देखने को मिलती है। इस सर्वेक्षण को हर व्यक्ति सर्वेक्षित कर निश्चय कर पाता है। कार्य प्रवृत्ति के अनन्तर फल प्रवृत्ति का होना पाया जाता है। फल परिणामों का आकलन हर समुदाय परंपराओं में प्रकारांतर से समावेशित है। विगत शताब्दी के अंतिम दशक तक उपलब्ध फल परिणामों के आधार पर मानव अपने ''त्व सहित व्यवस्था'' में जीने में असमर्थ रहा है। दूसरी मानवकृत कार्य परिणाम का स्वरूप नैसर्गिक-प्राकृतिक संतुलन से असंतुलन की ओर हुआ है। विगत शताब्दी के अंतिम दशक तक मानव अपनी समझदारी एवं उसकी सम्पूर्णता को परम्परा के रूप में पाने में विफल रहा है। अभी तक यह भी देखने को मिला है कि मानव अनेक परम्पराओं को स्वीकारता ही आया है। साथ ही परस्पर परम्पराओं की दूरी यथावत बनी ही है। ये दूरियाँ सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक प्रभेदों के आधार पर देखने को मिल रही हैं। उक्त चारो मुद्दों में कहीं भी सार्वभौमता का सूत्र (जिसको सभी अपना सके ऐसा सूत्र) नहीं मिला। यह पहली विफलता की गवाही है। युद्ध सदा ही राष्ट्र-राष्ट्र की परस्परता में मंडरा रहा है। आर्थिक विषमताएँ, साँस्कृतिक असमानताएँ सदा-सदा से मानव कुल को प्रताड़ित कर ही रही है। इस बीच साम्यवादी और पूँजीवादी विचारों को चर्चा के रूप में मानव कुल में प्रवेश कराया गया है। इन दोनों की अन्तिम मानसिकता बिन्दू एक ही हुआ - वह है भोगवाद। पूँजीवाद में ज्यादा कम का प्रकाशन होना देखा गया है। इसी को मुद्दा बना कर आर्थिक रूप में समानता की परिकल्पना दी गयी जिसे साम्यवाद कहा गया। अधिकतर जनमानस में साम्यवाद स्वागतीय होते हुए जिन देशों में साम्यवादी प्रथा शासन-प्रशासन के रूप में ढाली गई वहाँ के सभी लोग अथवा सर्वाधिक लोगों ने भोगवाद व पूंजीवाद को ही पसंद किया। इसे भली प्रकार से देखा गया है कि पूंजीवाद के समान ही लाभोन्माद से साम्यवाद भी पीछा नहीं छुटा पाया। पूंजी के आधार पर जो परिकल्पनाओं को एकत्रित किये वह एक प्रबंध, के रूप में मानव के हाथों अर्पित करने के उपरान्त भी उन ही प्रबंधों में इस सिद्धान्त के नाम से प्रबंध का विरोधी प्रबंध, विरोधी प्रबंधो का समन्वय प्रबंध एवं पुन: प्रबंध का जिक्र किया। इससे प्रबंध विहीन मानसिकता जनमानस के हाथ लगी। इसी आधार पर विचार और कार्यक्रम की निश्चयता, स्थिरता लाखों पूंजीवादी आदमियों को कत्ल करने के उपरान्त भी हाथ नहीं लगी। इसी के साथ भौतिकवादी विचार के साथ यह भी एक भ्रम पीछे पड़ा ही रहा कि ''विकास अन्तविहीन होता'' है। इन दोनों कारणों से भौतिकवादी प्रबंधों के आधार पर व्यवस्था का निश्चयन होना संभव नहीं हो पाया। जबकि भौतिकवादी प्रबंध के रचयिता और पंडितों को पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित किया गया। यह भी हमारी देखी

हुई घटनाएँ हैं। इस विधि से साम्यवादी विचार का अन्त सामान्य जनमानस के अनुसार भोगवाद में परिणत हो गया, और जहाँ तक शासन प्रशासन के तौर तरीके का मुद्दा है, अभी तक पूँजीवादी देश जितना भ्रमित रहा है उतना ही साम्यवादी देश भी उलझा रहा है, भ्रमित रहा है। अभी की स्थिति में पूँजीवादी देशों में सामरिक तंत्र और मात्रा दोनों बढ़ा हुआ देखने को मिलता है। इसी के साथ-साथ साम्यवादी देश कहलाने वाले इस दशक के अन्त तक जो भी बचे हुए हैं, वे भी अपने सामरिक तंत्र और मात्रा में पर्याप्त समर्थ हैं; ऐसा बता रहे हैं।

जो साम्यवादी देश नहीं हैं, धर्म निरपेक्ष तंत्रवादी और लोककल्याण तंत्रवादी, जातिवादी, सम्प्रदायवादी भेदों में गण्य हैं। उल्लेखनीय तथ्य यही है इन किसी भी वाद परस्त संविधानों में सार्वभौम आचार संहिता का सूत्र और व्याख्या देखने को नहीं मिली। इसके अनंतर कई राष्ट्रों के गठन से गठित संस्थायें भी बनी हैं। उन में से एक गुट निरपेक्ष है, एक कामनवेल्थ तथा एक राष्ट्र संघ है। इसी के साथ और भी कई नामों से कुछ कुछ देश मिलकर संगठनों को बनाए रखे हैं। इन सभी संगठनो में परस्पर मानवीयता पूर्ण व्यवस्था सहज आचार संहिता का सूत्र और व्याख्या नहीं हो पायी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की अनुशंसा के अनुसार शिक्षा में सार्वभौमता को पाने की विधा में कई उप-संस्थाओं को शामिल किये हैं। ऐसी चार-छः संस्थाएँ विभिन्न देशों में काम कर रही हैं। अभी तक इनसे कोई सार्वभौम मानसिकता सहज शिक्षा-प्रणाली-नीति और कार्य योजना स्थापित नहीं हो पायी। ये सभी संस्थाएँ जिनके पास अधिक पैसा है, पैसा बाँट देना ही अपना कार्यक्रम मान लिए हैं। इसी क्रम में अधिकांश देश, सामान्य लोगों के पास पैसे पहुंचने पर, सब विकसित हो जायेंगे ऐसा सोचा करते हैं, कार्य भी वैसा करते है। यह भी इस दशक में देखने को मिल रहा है कि सर्वाधिक पैसा जिसके पास है वही ज्यादा से ज्यादा शोषण करता है। जहाँ ज्यादा शोषण होता है - वहीं ज्यादा पैसा एकत्रित होता है यह देखा गया है। इतना ही नहीं व्यापार और शोषण में जो पारंगत हैं ऐसे लोग बड़े-बड़े कोषालयों की कार्यशैली में धूल झोंककर स्वयं लाभ पैदा करते हुए देखे गये हैं।

जहाँ तक गणतंत्र-प्रजातंत्र-समाजतंत्र किसी भी नाम से जनमत के आधार पर जो व्यक्ति गद्दी में बैठ जाता है उन सब का कमोवेशी कार्यकलाप का तरीका मूलतः एक सा होना बनता है अर्थात् विशेष हो जाता है। सभी राज्य शासन-प्रशासन के लिये संविधान बना ही रहता है। ऐसे सभी संविधानों में तीन मुद्दे प्रधान है। गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना। यह प्रायः सभी राजशासन की

गति-प्रवृत्ति और दिशा है। पर्याप्त जन सुविधा, व्यक्ति विकास, समानता का अधिकांश लोग आश्वासन देते हुए जनमत प्राप्त करते हैं, गद्दी पर बैठ जाते हैं। जबकि संविधान के अनुसार ऊपर कही हुई बुलंद प्रवृत्तियाँ, अनुशासनों की आवाज को दबा देती हैं। उसी के साथ-साथ वोट और नोट का गठबंधन, जनमत अर्जन समय से ही पीछे पड़ा रहता है। सर्वोच्च सत्ताधारी ही सत्ता का आबंटन करने में सक्षम होना संविधान मान्य रहता ही है। आबंटन के उपरान्त कुछ लोगों के लिये जिनको आबंटन में सत्ता हाथ लग गई है, उनमें और उनसे सम्मत व्यक्ति में क्षणिक सन्तुष्टि देखने को मिलती है।

जिनको सत्ता में भागीदारी की अपेक्षा रहते हुए सत्ता में भागीदारी नहीं मिली वे एवं उनके समर्थक असन्तुष्ट दिखते हैं। इस प्रकार संपूर्ण देशों की गणतंत्र प्रणालियाँ वोट-नोट-बँटवारा-सन्तुष्टि-असंतुष्टि के चक्कर में फँसे हुए दिखाई पड़ते हैं। इस मुद्दे पर जनचर्चा यही स्वीकारने के जगह में आयी, सबको स्वीकार्य घटना हो ही नहीं सकती। यदि होती है तो वह ईश्वराधीन है। संवाद करने पर सभी व्यक्ति संतुष्ट हो नहीं सकते - ऐसा निष्कर्ष रहा। संतुष्टि सबको चाहिये कि नहीं चाहिये, पूछने पर सबको संतुष्टि चाहिये यही उद्‌गार निकलता है। ऐसा भी परीक्षण इसी तथ्य का समर्थनकारी है कि मानव अपनी मानसिकता के मूल में सर्वशुभ को स्वीकारा ही है।

धर्म निरपेक्षता को कुछ संविधान में स्वीकारे हुए हैं, किन्तु संविधान में धर्म निरपेक्षता का आचरण (मूल्य, चरित्र, नैतिकता) का सूत्र व्याख्या अध्ययनगम्य व लोकगम्य नहीं हुआ है। जहाँ तक जनकल्याणकारी नीति को जो देश अपनाया है वह अपने में ज्यादा से ज्यादा पैसा और सुविधा सबको मिलने की मानसिकता है और प्रतिज्ञा है। किसी भी विधि से प्राप्त संग्रह-सुविधा का तृप्ति बिन्दु न होने के कारण निरंतर ही अग्रिम सुविधा-संग्रह की प्यास जनमानस में क्रमशः बढ़ती हुआ देखने को मिल रही है। इस विधि से जनकल्याणकारी विचारों को लेकर सामरिक तंत्र से लैस गतिविधि अन्य देश जो सामरिक तंत्रणा से उतना लैस नहीं है, ऐसे देशों को अपना स्रोत बनाने में अर्थात अपने देशवासियों के आवश्यकताओं को पूरा करने के स्रोत के रूप में अपने को तैनात करने में व्यस्त हैं। इसी के साथ उन ही देशों के हाथो में अर्थतंत्र का भी नियंत्रण बन चुकी है। विज्ञानवादी अर्थतंत्र के अनुसार अथवा लाभोन्मादी अर्थतंत्र के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष जिन-जिन देशो में अधिक हो गया है वे सब शोषण के योग्य हो चुके है। बाकी देश शोषित होने के योग्य हो चुके हैं। इस विधि से प्रचलित लाभोन्मादी अर्थतंत्र के अनुसार इसका समाधान बिन्दु मिलता नहीं है।

तटस्थ देशो का मानना है किसी भी खेमे में कूटनीति और समरनीति को समाहित न किया जाये। तो किया क्या जाये ? इसका उत्तर स्पष्ट नहीं है। इस विधि से स्पष्ट नहीं है कि तटस्थ चरित्र क्या चीज है ? इसका उत्तर मिलता नहीं है। यह उस समय उद्‌गमित हुई जब साम्यवादी और पूंजीवादी कटु विरोधी रूप में कार्य करते रहे। प्राय: इस तटस्थता के पक्ष में वे सभी देश हैं जो सामरिक तंत्र और मात्रा में अपने को कमजोर समझते है अथवा कमजोर है। व्यवहारात्मक विचारों से इसका मूल्यांकन होना एक आवश्यकता रही।

सर्वाधिक देश जिसकी भागीदारी को स्वीकारें है वह राष्ट्रसंघ अभी तक किसी सार्वभौम संविधान, सार्वभौम शिक्षा, सार्वभौम जनमानसिकता को पाने की विधा ढूढ़ने की कोशिश में हैं। ऐसा उन संस्थाओं के उद्‌गार से पता लगता है। युद्ध विभषिका को रोकने के पक्ष में अपनी सम्मति को व्यक्त किया रहता है। इन मनोनीतियों के अनुसार इस संस्था में सर्वोच्च प्रतिभाएँ काम करते रहते हैं। राष्ट्रसंघ के मानसिकता के अनुसार भी विकास और बेहतरीन जिन्दगी की सम्मति अभी तक संग्रह-सुविधा युद्ध सामरिक तंत्र में अग्रगामियता, व्यापार में सर्वाधिक फैला हुआ देशो को विकसित मानने के पक्ष में दिखाई पड़ती है। जबकि संग्रह-सुविधा अभी तक जिस चोटी में पहुंच चुकी है उतना संग्रह-सुविधा सबको मिलने की विधि इस धरती पर नहीं हो सकती। क्योंकि संग्रह-सुविधा से लैस व्यक्ति हर परिवार संस्था को मिलने का प्रावधान नहीं है। इसके लिए धरती छोटी दिखाई पड़ती है। थोड़े लोग इस धरती पर रहने से सबको सुविधा-संग्रह मिल जायेगा विभिन्न संस्थाओं ने ऐसा भी सोचा। इसी आधार पर विभिन्न राज्य संस्था, समाजसेवी संस्था, संयुक्त राष्ट्र संघ और भी जितने छोटे बड़े संगठन है वे सब इस बात को दोहराते हैं कि जनसंख्या नियंत्रण होना चाहिये।

यह भी एक नजीर इसी दशक में देखने को मिला कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के आवाहन के अनुसार एक पृथ्वी सम्मेलन किया गया जिसमें ऊपर कहे गये ढाँचा-खाँचा में आने वाले देश अपने को विकसित एवं अन्य देशो को विकासशील अथवा अविकसित घोषित किये। इस पर राष्ट्रसंघ अपनी सहमति व्यक्त किया। साथ ही यह भी बताए कि जो अपने को विकसित देश घोषित किये हैं उनके मार्गदर्शन के अनुसार अन्य देश चलना चाहिये क्योंकि उक्त दोनो कोटि के देश विकसित होना जरूरी है। विकास का दावा जितने देश भी किये है उसमें अधिकांश भाग अत्याधुनिक सामरिक तंत्र और यंत्र ही है। इसका दूसरा भाग संग्रह-सुविधा, भोग, अतिभोग बहुभोग ही है। अथवा इसी ओर है। संग्रह, सुविधा भोग के आधार पर जिन्हें विकसित देश बता रहे है उसकी सार्वभौमता के लिए हर

व्यक्ति-परिवार उतना सुविधा-संग्रह और खर्च करने की आवश्यकता इच्छा करता ही है जबकि सबको सुविधा संग्रह समान मात्रा से मिल नहीं सकती। इस विधि से विकास तंत्रणा कहाँ पहुँचा ? इसका उत्तर कौन देगा ? कौन जिम्मेदार है ? राष्ट्रसंघ जिम्मेदार है ? या विकसित देश जिम्मेदार है ? यही दो तबके अपने को सर्वाधिक-अधिकाधिक विकसित होने का सत्यापन प्रस्तुत किये है। जबकि विकास का मापदंड संग्रह-सुविधा के आधार पर अथवा भक्ति विरक्ति के आधार पर सर्वसम्मत नहीं हो पाते हैं।

सुदूर विगत से, क्रमागत विधि से आई जनचर्चा, शिक्षा, विविध माध्यम भौतिकवादी और ईश्वरवादी मान्यताओं, घटनाओं के आधार पर नकारात्मक, सकारात्मक विधि से निर्णय लेते रहे। इस बीच बहुेत सारे यांत्रिक घटनाएँ प्रकृति सहज उर्मियाँ मानव को कर्माभ्यास में कर तलगत हुई जैसे दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-गमन जैसी दूर-संचार विधियाँ विविध उपक्रमों से स्थापित हो गई। इसकी शिक्षा विधि भी सभी देशों में स्वीकृत हो गई है। किसी देश में सर्वाधिक सुलभ व किसी देश में कम सुलभ हुई है। इससे अनायास ही मानव जाति के लिए उपलब्धि यह हुई कि सभी समुदाय, परिवार, व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र एक जगह में जुटने का किसी निश्चित मुद्दे पर परस्पर आदान-प्रदान चर्चा और निर्णय लेने के लिए सहायक हो गई। अभी तक परम्पराओं में जन मानसिकता और जनचर्चा स्पष्ट हो चुकी है उसी के अनुरूप विविध समुदाय बारम्बार एक दूसरे के साथ परामर्श विधि अपनाना सुलभ हुआ इसी के साथ घरेलू उपकरणों को और आवास-अलंकार संबंधी वस्तुओं को निर्मित करने में यंत्रोपकरण की सहायता उपादेयी मानी गई है। इस दशक के मध्यभाग तक मानव ने यह भी आँकलित किया है कि हर उत्पादन ठीक समझा हुआ आदमी के हाथों से जितना सस्ता हो सकता है उतना यंत्रोपकरण से नहीं हो सकता है। इस ध्वनि से यह भी एक स्वाभाविक अनुमान होता है सभी मानव के लिए कार्यकारी योजनाएं विधिवत समझ में आयी नहीं रहती है। कुछ लोग यांत्रिकी तकनीकी के आधार पर यंत्रों की सहायता से उत्पादन को बढ़ावा देने का कार्य किये है। इसका तात्पर्य यह हुआ इस दशक तक मानव में से अधिकांश लोग कार्यकारी मानसिकता से रिक्त रहते है और संचालनकारी मानसिकता से संबद्ध रहते है या संबद्ध होने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यही आज की देश धरती की जनमानसिकता का स्वरूप है। यह भी एक कारण रहा है आहार, आवास, अलंकार संबंधी उत्पादनों से एवं उसके प्रतिफलन मूल्यांकन विनिमय में और महत्वाकाँक्षी संबंधी वस्तुओं, उपकरणों के उत्पादनों के संतुलन स्थापित होना अभी तक नहीं हो पाया है। आज की स्थिति में कृषि उत्पादन का मूल्यांकन

उपेक्षणीय दिखाई पड़ता है। उससे अधिक आकर्षक मांसाहारी पशु-पक्षी पालन में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी है। उससे अधिक दिलचस्पी आवास संबंधी और वस्त्र संबंधी उत्पादनों में होना पाया जाता है। इससे अधिक दिलचस्पी महत्वाकाँक्षी संबंधी वस्तुओं के उत्पादन में दिखाई पड़ती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जनमानसिकता की प्रवृत्ति कृषि उपज कार्यों में कम होती गयी। अन्य कार्यो में अधिक होती गयी। यही संपूर्ण देश धरती की हालत है। व्यापार तंत्र लाभोन्मादी अर्थ तंत्र ऐसी स्थिति को निर्मित करने का उत्तरदायी होना समझ में आया। अतएव इसमें सन्तुलनकारी जनचर्चा की आवश्यकता है ही। सम्पूर्ण अर्थतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर निर्भर है। इसमें सभी राष्ट्र संस्थाएँ सहमत है। इसके बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा (बहुमूल्य धातुएँ) उपयोगिताशील वस्तुओं का प्रतीक मुद्रा ही है। प्रतीक प्राप्ति नहीं होती दूसरे विधा से प्राप्तियाँ प्रतीक नहीं होती इस सूत्र से स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बहुमूल्य धातुओं के रूप में पहचाना गया है। यह केवल धन को धन से पाने की विधि से सम्मत होकर सामान्य मानव हर उपभोक्ता ऐसी प्रतीक मुद्रा प्रणाली से प्रताड़ित होने के लिये बाध्य हो चुका है। इसके निराकरण सहज जनचर्चा और जनमानसिकता की आवश्यकता है। सुदूर विगत से ही हम संघर्ष के लिये ही जनमानस को तैयार करने के क्रम में संघर्षात्मक जनवाद को अपनाते आये हैं। संघर्ष एक सर्वस्वीकृत वस्तु न होकर मजबूरी का ही प्रदर्शन है। जैसे युद्ध किसी के लिये वांछित घटना नहीं है फिर भी युद्ध की तैयारियाँ हर देश करता है। यह देश-देश के बीच मजबूरी की स्थिति है। हर व्यक्ति एक दूसरे के साथ व्यवहारिक संगीत को स्थापित करना चाहता है। शिक्षा-संस्कार (प्रचलित) कार्यक्रम में इसके लिए कोई निश्चित प्रावधान न होने के कारण हर व्यक्ति एक दूसरे से सशंकित मानसिकता को लिये हुए संघर्ष को अपनाने के लिए विवश होता जा रहा है। इसका जीता जागता साक्ष्य यही देखा जा रहा है पति-पत्नि दोनो अलग-अलग कोषालयों में खाता बनाए रखना चाहते है। इतना ही नहीं है घर में रखी हुई पति पत्नि की पेटियों में अलग-अलग ताला होना भी पाया जाता है। हर परिवार में घर के दरवाजे पर ताला लगाया ही जाता है। ताला लगाने का तात्पर्य मानव जाति के प्रति शंका-कुशंका ही है। हर व्यक्ति इस बात को स्वीकार कर चलता ही है कि चोर डाकू होते ही है। इसलिए ऐसा प्रबंध करके रखना ही है। कोषालयों को देखे वहाँ भी अभेद्य कक्ष बनाए जाते है - इसके बावजूद भी यह सब लूटे जाते हैं। ऐसी घटनाओं को बारम्बार सुना जाता है। इन सभी घटनाओं को याद दिलाने के मूल मे एक ही मकसद है - हम मानव को अभी व्यवस्था में जीना है। ऐसी समझदारी विकसित नहीं हुई और उचित

प्रणालियों को अपनाना दूर ही है इसलिए जनवाद में व्यवस्था रूपी व्यवहार चर्चा को पहल करना परम आवश्यक है ही।

अतएव ''व्यवहारात्मक जनवाद क्यों'' इस मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है। इन विधाओं में इंगित दिशाओं की ओर ध्यानाकर्षण करना हमारा उद्देश्य है, समझना सफल बनाना आपका अनुग्रह है।

अध्याय - 2

अभिनय और उसका परिणाम

अभिनय और उसका परिणाम

साहित्य और कला माध्यमों से समाज की यथास्थिति (समाज का दर्पण) के प्रदर्शन में जो कुछ भी मानव ने किया उसमें सर्वाधिक अपराध और श्रृंगारिकता का वर्णन हुआ। इसी के साथ अच्छाई और असच्चाई जो परिकल्पना में आई, जो परिकथाएँ लिखी गई हैं उन सबका अभिनय ही मंचन के लिए आधार हुआ। जैसे ऐतिहासिक विधि में ईश्वरीयता को एक रस (आनंद) के रूप में जब मंचन किया गया वह भक्ति के रूप में ही मंचित हो पाया। भक्ति को तत्कालीन समय में ईश्वरीयता मान लिया गया। वही भक्ति श्रृंगारिकता की ओर पलता पुष्ट होता गया। उसका परिणाम छायावाद और रहस्यवाद में लुप्त होकर कामोन्मादी प्रवृत्ति उभर आई। इस प्रकार से शुरूआत में विशेष शुभ चाहते हुए उसके लिये किये गये सभी प्रयास श्रृंगारिकता और अपराधों में अन्त होता हुआ इतिहास वार्ताओं में सुनने को मिलता है। इतिहास भी जनचर्चा का एक आधार माना जा रहा है।

उक्त बिन्दु के आधार पर आगे जनमानस की अपेक्षा के सर्वेक्षण में यदि अच्छाइयाँ-सच्चाई कुछ है, उसी का विजय, उसी का वैभव होना चाहिए। इस प्रकार के उद्‌गार चर्चा संवादो में सुनने को मिलता है। आखिर सच्चाई क्या है ? हम तत्काल उत्तर विहीन हो जाते है, क्योंकि एक समुदाय जिन रूढ़ियों मान्यताओं को अच्छा मानता है, उनको दूसरा समुदाय बुरा मानता है। सच्चाई के मुद्‌दे पर यही अभी तक सुनने को मिला है, सत्य अवर्णनीय है। वाणी से, मन से इसे प्रगट नहीं किया जा सकता है। फिर हम सच्चाई के पक्षधर क्यों है ? मानव अपने आप में जितने भी सतह में व्यवस्थित है, उन किसी सतह में सत्य स्वीकृत होना पाया जाता है। इसको ऐसा कहना भी बनता है मानव सहज रूप में ही नियम, न्याय, व्यवस्था, सत्य, व्यापक, अनंत को नाम से या अर्थ से स्वीकार किया ही रहता है। हमारे अभी तक के सर्वेक्षण से यह पता लगा है, नाम से हर व्यक्ति स्वीकृत है। अर्थ से सम्पन्न होना प्रतीक्षित है।

साहित्य कला क्रम में आनन्द रूपी रस को सम्प्रेषित करने के उद्‌देश्य से प्रयासोदय होने का उल्लेख है। अंततोगत्वा यह रहस्य में अन्त होकर रह गये क्योंकि आनन्द एक रहस्य ही रहा। इसमें आनन्दित होने वाला, आनन्द का स्रोत, संयोग विधियाँ मानव के समझदारी का अभी तक अध्ययन सुलभ नहीं हो पाया है। किसी वस्तु के अध्ययन सुलभ होने के उपरान्त ही इसकी अभिव्यक्ति-सम्प्रेषणा सहज होना सर्वविदित है। अतएव काल्पनिक आनन्द अभिनयात्मक प्रदर्शन के योगफल में क्रमागत विधि से श्रृंगारिकता ही सर्वाधिक अभिनयों के माध्यमों से भ्रमित मानव को प्रिय लगना स्वाभाविक है। इसी को

एक मानव के लिए आवश्यकता, उपलब्धि के रूप में कल्पना करते हुए वीभत्स और रौद्र रस तक कल्पनाएँ दौड़ा ली। इसे चाव से लोग एकत्रित होकर देखते रहे अभी भी देखते है। जबकि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य ये सब मानव के आवेश का विन्यास और प्रकाशन है। इसके स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, प्रमाणिकता, व्यवस्था मूलक जनचर्चा कला साहित्य प्रकाशन, प्रदर्शन, शिक्षा-संस्कार व्यवस्था पर आधारित जनवाद की आवश्यकता है। दूसरे भाषा में मानव के साथ मानव की चर्चा का, वार्तालाप के निष्कर्ष का, संवादों का आधार होना एक आवश्यकता है। क्योंकि जिस विधि हम आदि काल से अभी तक गतित हुए है, उस जनचर्चा में भ्रमात्मक भाग ही सर्वाधिक है। प्रयोजनवादी यथार्थ का भाग न्यूनतम है। इसको हम भली प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। पूर्णत: प्रयोजनशील याथार्थ को रोजमर्रा की चर्चा में ला सकते हैं।

डाका, डकैती, जानमारी, गबन, शोषण, जघन्य पाप कृत्यो में नाम कमाया हुआ व्यक्तियों और हर मूर्ख समझदार में, से, के लिए गणतंत्र प्रणाली में भागीदार होने का अवसर, गणतंत्र प्रणालियों को अपनाये हुए सर्वाधिक संविधानों में प्रावधानित है। इसकी शुभ कल्पना यही रही जो जीता-जागता हमने देखा है कि गाँव-मुहल्ला में जब कहीं भी कोई कुकृत्य, गलती होती है उसका उजागरण होता हुआ देखा गया है। उजागर साक्ष्यों के आधार पर स्थानीय बुजुर्ग पंच अथवा मुखिया नाम से जो व्यक्ति सम्बोधित होते रहे उनके द्वारा लिया गया सभी निर्णय सर्वाधिक लोकमानस को स्वीकृत होता रहा। इसी आधार पर देश का मसला भी सुलझाया जायेगा, ऐसी मानसिकता से गणतंत्र प्रणाली के हम सब पक्षधर हुए। इसे राष्ट्रीय संविधान का रूप देने के लिये तत्पर हुए। लिखित अलिखित विधि से यह स्वीकारना आवश्यक हो गया कि जनमत प्राप्त करने के लिये धन खर्च करना आवश्यक है। जबकि गाँव-मुहल्ला में जितने फैसले हुए उन किसी फैसले के मूल में फैसला को चाहने वाले व्यक्ति, ने धन खर्च नहीं किया था। इसका गवाही इस प्रबंध के लेखक स्वयं है। हमारे जैसे और भी बहुत से लोग इस धरती पर विद्यमान होगें। यहाँ मुख्य मुद्दा यही है जिनको हमारा धर्म तंत्र अज्ञानी-पापी-स्वार्थी कहते आया और हर राजतंत्र अपने संविधान को अपने ही देशवासी गलती और अपराध कर सकते है ऐसा मानते हुए ही सभी संविधान बनाया। उन सबके लिए समान अवसर को गणतंत्र प्रणाली में समावेश करना एक आवश्यकता उत्पन्न हो गई। इस विद्या में बिना पैसे खर्च किए जनमत सहित जन प्रतिनिधि को पाने का चर्चा निष्कर्ष आवश्यक है।

गणतंत्र प्रणाली इस धरती पर जिस दिन, मुहूर्त से आरंभ हुई, उसके पहले जो अच्छे लोग और विद्वान कहलाते थे योगी, यति, सती, संत, तपस्वी, भक्त कहलाते थे, इन्हीं को सर्वाधिक लोग अच्छा मानते भी रहे। इनकी गवाहियाँ सम्मान प्रदर्शित करने के तौर-तरीके के रूप में गवाहित होते आयी। ऐसे अच्छे लोग अभी भी सम्मानित होते ही है। इन घटनाओं के घटित होते हुए भी गणतंत्र प्रणाली के किसी संविधान में किसी अच्छे चरित्र की स्पष्ट, सूत्र व्याख्या व अध्ययन नहीं हुआ। गणतंत्र प्रणाली में सब का मताधिकार, उम्मीदवारी का अधिकार समान स्वीकारा गया। कुछ देशों में अस्थाई रूप में आरक्षण विधियों को भी अपनाया। देश-देश में विद्यमान सभी समुदायों की पहचान व उनका उल्लेख संविधानो में होता आया। यह सब सकारात्मक प्रवृत्तियाँ होते हुए राजतंत्र से गणतंत्र बेहतरीन होने के उम्मीदों के आधार पर जनप्रतिनिधि अपने सभी विधियों को त्रिस्तरीय सभा बना लिया। उनमें हुई संवाद अभी तक अध्ययन में अथवा जन संवाद में चर्चा में नहीं आ पाते। जब कभी सुनने में आता है कि उस पार्टी वाला सत्तारूढ़ हुआ बाकी सब हार गये। इससे पता लगता है ये जनप्रतिनिधि सभाओं में पहुंच कर अपने निष्कर्षों तरीको को प्रस्तुत नहीं कर पाते है। प्रस्तुत करते भी है तो वह चिन्हित रूप में जनमानस तक पहुंच नहीं पाता है। यही अभी तक देखी सुनी हुई घटना है। यह भी देखने को मिला है प्राचीन काल में जो राजनैतिक इतिहास और घटनाओं के उल्लेख के आधार पर कूटनीतिक (छल, कपट, दंभ, पाखंड) प्रचलन थे। वही कूटनीति एक बार जनप्रतिनिधि होने अथवा दूसरी बार जनप्रतिनिधि होने के उपरान्त मानसिकता में स्थापित होते हुए देखने को मिल रही है। गणतंत्र प्रणाली की मूल उद्देश्य न्याय सम्मत निष्कर्ष की रही - उसका अता-पता अभी तक किसी देश धरती में देखने को नहीं मिला। इस विधि से सर्वाधिक निषेधात्मक चर्चा ही आज कल जनमानस में बनी है। चर्चा में भागीदारी किया हुआ व्यक्ति स्वयं असंतुष्ट रहता है। परिणामत: संघर्ष के लिए तैयारियाँ हो जाती है। इस विधि से संघर्षात्मक जनवाद प्रचलित हुआ।

तकनीकी विद्या भी संग्रह सुविधा के चक्कर में आकर बहुत सारी गलती और अपराध के लिए आधार बन चुकी है। शोषण विद्या तकनीकी के साथ जुड़ा ही है इसमें नैसर्गिक और मानव दोनो समाहित है, संकटग्रस्त हैं।

इसमे से कुछ ऐसी तकनीकी है जो मानव का शोषण सर्वाधिक करता है। तकनीकी विधि से अनेक पुर्जों से एक यंत्र तैयार होता है ऐसा मान लिया गया है। उसी क्रम को मानव के शरीर के साथ भी ऐसा ही सोचना शुरू किया। इसी क्रम में हड्डी खराब

होने पर हड्डी बदल देंगे - गुर्दा खराब होने पर गुर्दा बदल देंगे। इसी प्रकार हृदय, आँख, नाक, चमड़ा, रक्त के सम्बंध में भी सोचा गया। इसको क्रियान्वयन करने के क्रम में मानव अपने प्रयासों से किसी भी अंग अवयवों के हड्डी, मांस और स्नायुओं को बनाने में असमर्थ रहा। इन चीजों को बदला जा सकता है। यह तकनीकी कर्माभ्यास पूर्वक कुछ लोगो को करतलगत हुई। विगत दशक और इस दशक में बीती हुई पाँच वर्ष में अनेकानेक जनचर्चा पत्र पत्रिका की सूचना दूर दर्शन साक्षात्कारों के रूप में देखा गया सुना गया कि किसी का गुर्दे, किसी का आँख, किसी के कुछ और अंगो को कुशल शल्य चिकित्सक अपहरण कर लिया। इन खबरों को सुनने से जो प्रभाव पड़ा कि मूलत: शल्य चिकित्सा विधि शुभ के लिये ही आरंभ हुई है किन्तु वर्तमान में अशुभ का भी कारक बन चुकी है। यदि ऐसी घटनाओं में वृद्धि हो जाये तो कौन किसके पास बेहोशी में होकर आपरेशन कराना चाहेगा। बेहोशी के अनन्तर मानव के किसी भी अंग अवयव को काँट-छाँट कर अलग कर सकते है। उसके बाद ऑपरेशन जिसका हुआ है वह चाहे बचे चाहे मरे। इन स्थितियों मे हम आ चुके है।

इसी प्रकार इसके आगे दवाइयों का संसार है, जो अत्याधुनिक विधि से बनाई जातीं है। उनसे जितना लाभ होता है इससे अधिक परेशानी होने की सूचना, उन्हीं दवाई से चिकित्सा करने वाले स्वयं बताया करते है। ये सब होते हुए भी ऐसी अत्याधुनिक दवाइयाँ लोकमानस के लिए आकर्षण बनी हुई है। जहाँ तक रोग की बात है अत्याधुनिक शरीर शास्त्र का अध्ययन करने के अनुसार व्यवस्थागत रोगो यथा गृधसी, श्वास, भुजस्तंभ, कटिग्रह, स्तंभगत, मधुमेह, रक्तचाप जैसे रोगों का कारण अज्ञात एवं असाध्य (ठीक न होने वाला) रोग बतलाते है फिर भी हर चिकित्सक कोई न कोई दवाइयों को देता ही रहता है।

इसी के साथ और इंजीनियरिंग तकनीकी-प्रौद्योगिकी केमाध्यम से धरती, जल और हवा पर अनेकानेक यंत्र संचारित हैं ही। इस धरती के प्रभाव क्षेत्र से दूर-अति दूर में इस धरती के गति से ताल मेल रखता हुआ उपग्रहों को स्थापित कर दूर-संचार और दूर-दर्शन संबंधी गति को तकनीकी सम्बद्ध प्रौद्योगिकी क्रिया विधि से इस धरती पर सफल बना चुके। ऐसे ही बड़े-बड़े यंत्रो की सहायता से इस धरती के पेट को भले प्रकार से क्षत विक्षत किये जा रहे हैं। इस दशक तक इस धरती के पेट को क्षत विक्षत करने का आकर्षण, आवश्यकता अथवा विवशताएँ खनिज तेल, खनिज कोयला के रूप में होना देखा गया है। इन दोनों वस्तुओं के सम्बंध में भूगर्भ सर्वेक्षण से जितना पता लगा चुके है

उसमें विज्ञान जनचर्चा के अनुसार 50-60 वर्षों तक का खनिज तेल एवं 150-200 वर्षो तक खनिज कोयला की आपूर्ति होना बताया जा रहा है। लोहा पत्थर से समउन्नत कई पहाड़ धरती की सतह तक पहुंच कर मैदान हो चुके है। विकिरणीय धातु और सोना जैसे धातु के लिये भी धरती का पेट फाड़ा जा रहा है। इन सब क्रियाकलापों में सर्वाधिक प्रयोजन सुविधा संग्रह है - यह भोग के लिये ही है। ये सभी तथ्य बीती जा रही कृत्यों के साथ जुड़ी हुई जनचर्चा के रूप में सुनी जा रही है। यह भी जनचर्चा में सुनने में आ रहा है कि धरती बिगड़ती जा रही है। विज्ञान संसार के कुछ ईमानदार लोग यह सोचने लगे है कि यह धरती ज्यादा दिन चलने वाली नहीं हैं। विज्ञानियों में दो मत रहे है। उनमें से एक मत के अनुसार जो कुछ भी है वह व्यवस्थित है ऐसा मानते हुए सारे यांत्रिक क्रियाकलापों की कल्पना करते रहे। दूसरा मत इसके बिल्कुल उल्टा बताते रहते हैं - व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर। तीसरा यह भी बता सकते है - (अभी तक बताए नहीं है) - अव्यवस्था से अव्यवस्था की ओर।

अभी तक जो कुछ भी विज्ञान तंत्र है हर व्यक्ति को अव्यवस्था करण-कार्य में भागीदार बनाने के लिए मजबूर करता जा रहा है। और कुछ ऐसी आवाजें सुनने में आ रही है कि धरती के प्रभाव क्षेत्र की मोटाई 100 में से 32 भाग विलय हो गयी अथवा बीच-बीच में बहुत सारे गड्ढे हो गये। जो विलय हो गये-गड्ढे हो गये वही सूर्य की किरणो को रश्मियों में बदल कर धरती में पचने योग्य बनाकर धरती तक पहुँचाती रही है। बीसवीं शताब्दी के दसवीं दशक में यह भी सुनने में आ रहा है कि धीरे-धीरे धरती में गर्मी बढ़ रही है (ताप वृद्धि)। साथ में यह भी सुनने को मिल रहा है कि समुद्र में जल स्तर बढ़ रहा है। इन दोनो के सम्बंधों को इस तरह बताया जा रहा है कि दक्षिणी-उत्तरी ध्रुवों में जो बहुत सारा बर्फ जमा हुआ है वह सब धीरे-धीरे धरती के तापवश और सूर्य की किरणों वश द्रव रूप में बदलने से वही समुद्र के जलस्तर को बढ़ाने का कारण बता रहे हैं। सामान्य लोगो को जल स्तर बढ़ता हुआ बोध नहीं हो पा रहा है। फिर भी जनचर्चा में यह भी एक मुद्‌दा बन चुका है। यहाँ विचारणीय बिन्दु यह है कि इस धरती में समुद्र का जल स्तर ऋतु सम्मत और संतुलन विधि सहित इस धरती के सतह में सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया, प्रणाली और जागृत-प्रक्रिया-प्रणाली वर्तमान में प्रकाशित होने योग्य व्यवस्था स्थापित रही है। पुनश्च विकास, विकास क्रम वर्तमान में प्रकाशित रहना ही अस्तित्व सहज सहअस्तित्व रूप में कार्यकलापों, परिणामों, परिवर्तनों का प्रयोजन प्रमाणित है।

इस धरती पर मानव अपनी परम्परा के रूप में प्रकाशित होने के पहले से ही यह धरती जीव-जानवर, वन-वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, मृदा, पाषाण, मणि, धातु से समृद्ध रही है। मानव की वंश परम्पराएँ विविध भौगोलिक परिस्थितियों में आरंभ होकर स्वयं स्फूर्त कल्पनाशीलता और पहचानने की आवश्यकता व उत्साह के योगफल में सर्वप्रथम खाने-पीने योग्य वस्तुओं की पहचान, शरीर रक्षा क्रम में आवास पद्धति को अलंकार वस्तुओं को पहचानने की गवाही विगत से प्राप्त हो चुकी है। साथ ही मानव आरंभिक काल से ही भयत्रस्त होकर बचाओ आर्तनाद करता आया। यह दीनता और विपन्नता का द्योतक रहा है। यह मानव को स्वीकार नहीं हुआ। जैसे ही विज्ञान मानस मानव कुल में स्थापित हुई वैसे ही प्रकृति पर विजय पाने का, शोषण व प्रयास प्रक्रियाओं के रूप में क्रियान्वयन होते आया। शनैः शनैः प्रकृति पर विजय पाने की आवाज इस दशक में काफी हद तक दबी हुई दिखाई पड़ती है। इन दिनों जितने भी विज्ञान सभायें होती है उनमें प्रकृति के विजय के स्थान पर प्राकृतिक सम्पदाओं का दोहन क्रिया के अर्थ में शब्द का प्रयोग करते है। यही विज्ञान कुल अर्थात विज्ञान परम्परा में आवाज का बदलाव है। यह बदलाव होते हुए कार्य विधि में धरती के साथ अपराध क्रिया का तादाद बढ़ गई।

विजय पाने का अर्थ सर्वविदित है ही। आदिकाल से बाघ व भालू पर विजय पाने की घटना उनके नाश के साथ ही रही है। इसी प्रकार प्रकृति पर भी विजय पाने का अर्थ प्राकृतिक वैभव को नाश करने अथवा विध्वंस करने को मानव तत्पर हुआ। इसमें काफी हद तक मानव की हविस पूरी हुई। हविस का तात्पर्य अपनी मनमानी विधि से सुविधा संग्रह, भोग, अतिभोग की ओर बढ़ते जाने से है। अधिकांश लोगों को इस दशक में समझ में आया है। इसके साथ यह भी समझ में आया है कि सुविधा संग्रह का तृप्ति बिन्दु नहीं है। इस धरती में जो सम्पदायें वन-खनिज के रूप में रही हैं। उसी का दोहन (शोषण) व छीना-झपटी के रूप में देखा जा रहा है। वन का क्षय होते ही आया। इस शोषण विधा में यह भी देखने को मिला कि शासन तंत्र द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के शोषण को वैध मानते है और अन्य व्यक्तियों द्वारा प्राकृतिक सम्पदा के शोषण किये जाने पर उसे अवैध मानते हैं। इसी बीच द्रोह-विद्रोह घटनाएँ घटित होते ही आयी आज तक की सभी घटनाएँ चाहे वैध रही हो या अवैध रही हो सजी धजी इस धरती को तंग करती हुई एवं धरती तंग होती हुई देखने को मिली। धरती गर्म होती हुई, समुद्र का जल बढ़ता हुआ, सर्वाधिक जगह मे वर्षा कम होती हुई, ठंड कम होती हुई, गर्मी बढ़ती हुई, नदी नाले सूखते हुए, जल स्तर धीरे-

धीरे नीचे जाता हुआ, गर्मी के दिनो में सर्वाधिक कुआँ तालाब सूखता हुआ देखने को मिल रहा है। यह बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक के उत्तरार्द्ध की स्थिति हैं।

इस धरती पर इस समय दृश्यमान स्थिति के अनुसार हर मानव सुविधा, संग्रह में प्रवृत्तशील है और हर परम्परा व माध्यम इसी का प्रवर्तनशील है। राज नेताओं को निश्चित दिशा और राजनैतिक सार्वभौमता की कोई पहचान आज तक नहीं हो पायी है। अभी तक किसी देश के बुध्दिमानों के अनुसार 3000 वर्ष का इतिहास बताया जाता है किसी देश में 5000 वर्ष बताया जाता है। कुछ देशो में लाखों करोड़ों वर्ष का होना बताया जाता है। इन सभी इतिहासों को तर्क संगत बनाने के लिए विगत की किताबों और पुरातत्व को अपनाया गया है। पुरातत्व को भूमिगत, समुद्रगत व स्थलगत भी होना पाया गया है। इस प्रयास में मानव सभ्यता के आरम्भ काल को पहचानने की मंशा रहती है। इस उपक्रम के साथ प्राचीन काल शल्यों को उसकी रचना के विश्लेषण के अतिरिक्त इस धरती को स्थायी वस्तु जो कोषा के रूप में परिवर्वित होने के लिए प्रवृति को रखता है उसका नाम कार्बोनिक है। उसके अर्थात उस शैल्यों में निहित कार्बोनिक शैल्यो की विधा विद्युतीय प्रभावीकरण विधि से प्राप्त कर लिया है उसी से पुराने पत्थर की आयु का पता लगाते है। इस प्रक्रिया से बड़े बड़े पहाड़ो की आयु का अनुमान किया जाता है। विगत के अध्ययन क्रम में बीती हुई धटनाओ के क्रम का अनुमान करने के क्रम में यह भी उल्लेखित है कि यह धरती कई बार पलट चुकी है। इस मुद्दे पर कुछ ऐसे जीव जानवरो का शल्य मिला है। जिसकी परम्परा इस समय में देखने को नहीं मिलती है। इसी आधार पर उस समय में यह धरती पलटने के पहले समय में ऐसे जीव जानवर रहे है। धरती पलटने के साथ वे सब शल्य बन चुके है। ऐसा शल्य विशेषकर कोयला खदानो में मिलता है और वह गहरी खुदाई के क्रम में कहीं-कहीं मिलता। ऐसे साक्षी को इस धरती के बुद्धिमान बहुत सारा एकत्र किये इस उपक्रमो के साथ पत्थरो व शल्यो की जो भी आयु निर्धारण करते है। वह तो हमे मिली हुई वस्तुओ के आधार पर हमारा अनुमान होता है। इन सब वस्तुओ के आयु निर्धारण के साथ-साथ हमें कोई सामाजिक आर्थिक राजनैतिक ध्रुव मिलता नहीं है। इस वर्तमान में हर सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा यही है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक गतियो में साम्यरसता, समाधान, निश्चित गम्यता जिससे सुन्दर सामाजिकता सिद्ध हो सके ऐसी गम्यता के लिए निश्चित गति आवश्यक है। उल्लेखनीय बात व तथ्य यही है। आर्थिक विधा हर मानव में सुविधा संग्रह के अर्थ में स्पष्ट है राजनैतिक विधा यश, पद, धन

के चगुंल में फंसा है। सांस्कृतिक विधा समुदाय मानसिकता व रूढ़ियों के चगुंल में भली प्रकार से फंस चुकी है यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि यश का तात्पर्य बहुत लोग जिनका चेहरा-मोहरा को भली प्रकार से पहचानते है। जिसे बच्चे-बच्चे जानते है ऐसा चेहरा-मोहरा नाम से पहचानने वाली घटना को हम तीन क्रम में देखते है :-

1. राजनेता के रूप में
2. कलाकारों के रूप में
3. डाका-डकैती और इन्द्रजाल जादू के रूप में देखा गया।

इन सभी की पहचान बनाने के काम में माध्यम निष्ठा से लगे हुए है, माध्यमों का खाका आज की स्थिति में रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिका, उपन्यास विधाये है। इससे पता लगा कि यश पाने की वस्तु क्या है। यश का मतलब आज के कलाकारो का कथन जो हम सुनते है लोग जो चाहते हैं अथवा लोक शक्ति के अनुसार गति है। सम्भाषण करते हैं प्रदर्शन करते हैं हर राजनेता का कथन-हम जनसेवक है जबकि इन किसी में पद व पैसे के अतिरिक्त लक्ष्य दिखाई नहीं देता। डाकूओं का कथन यही है शासन-प्रशासन से किया गया अत्याचार ही डाकूओं को जन्म देता है। सांस्कृतिक रूढ़ि और समुदाय मानसिकता अपना पराये का दीवाल बनाते ही आया।

ये सब दिशा विहीन राजनीति, प्रयोजन विहीन शिक्षा नीति, रहस्यमयी धर्मनीति (रहस्यमयी ईश्वरता) प्रधानत: हर मानव को अपनी मानसिकता को सार्वभौम रूप देने में असफल रही है। इस समय में इस धरती पर छ:-सात सौ करोड़ आदमी होने का आँकड़ा है। इन छ:-सात सौ करोड़ आदमी में सर्वाधिक लोगो के अनुसार 90% आदमी इन सभी विधाओं में स्पष्टता, निश्चयता व सार्थकता को समझना चाहता है और ऐसी सार्वभौम समझदारी को जीवन शैली और दिनचर्या में पहचानना व मूल्याँकन करना चाहते हैं। इस सामान्य विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हर मानव धरती और धरती में पर्यावरण के सन्तुलन के पक्ष में व असंतुलन के विपक्ष में है।

इतने लम्बे अरसे की मानव परम्परा अभी तक धर्मगद्दी, शिक्षागद्दी, और राज्यगद्दी में कल्याणकारी दिशा व लक्ष्य को पहचान नहीं पायी, इन तीनों विधाओं में होने वाली प्रवृतियों व कार्यो के पक्ष में अथवा कार्यो के रूप में शिक्षा गद्दी के कार्यकलाप को देखा जा रहा है। अतएव इन चारों प्रकार की परम्परायें अपने आप में भ्रष्ट हो चुके हैं। हर मानव इनमें परिवर्तन चाहता है। इसकी आपूर्ति के लिए ही अथवा इस

ओर प्रवर्तित करने के लिए ही इस व्यवहारात्मक जनवाद को प्रस्तुत किया है। जिसमें

(1) धर्म - मानव धर्म स्पष्ट होने

(2) शिक्षा - मानव चेतना मूल्य शिक्षा में पारगंत प्रमाण होने

(3) राज्य - अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सहज विधि-विधान राज्य राष्ट्र चेतना में पारंगत प्रमाण होने का जन चर्चा व संवाद सहज प्रस्ताव है।

अध्याय - 3

व्यवहारात्मक जनवाद का स्वरूप

(मानव व्यवहार)

व्यवहारात्मक जनवाद का स्वरूप
(मानव व्यवहार)

लक्ष्य दिशा प्रवृति :

हर मानव देशकाल, परिस्थिति भाषाओं से परिसीमित प्रवृतियों के साथ ही एक दूसरे से मिलता है। ऐसी परिसीमा में संस्कृति-सभ्यता विधि व्यवस्था का भी संयोजन प्रवृतियों में झलकता ही रहता है। हर मानव की प्रवृति में देश, धर्म (या सम्प्रदाय) के आधार पर ही संस्कृति, सभ्यता का स्पष्टीकरण होता हुआ सुनने को आता है। बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में भी ऊपर कहे देश, धर्म, राज्य, संबंधी सार्थक-असार्थक, आवश्यक-अनावश्यक, मजबूरी-जरूरी के उद्‌गारों के रूप में अधिकांश मुद्‌दो की चर्चा की जाती है। इसी के साथ इस दशक तक यह भी देखा गया है कि परिचर्चा गोष्ठी संगोष्ठियों में सर्वाधिक वर्चस्वी कार्यक्रमो के रूप में शिक्षण प्रशिक्षण शालाओं में आहार बिहार के बेलाओ में व्यवहार उत्पादन के कार्यकलापो में जनचर्चा का ताना-बाना बना ही रहता है। आगे और चर्चाओ की विविधता के पक्ष में ध्यान देने पर पता लगता है युद्ध-व्यापार महत्वपूर्ण बिन्दुओ के रूप में रहता ही है। संग्रह सुविधा का बखान भक्ति विरक्ति का गायन कथा ये भी जनमानस में चर्चा का विषय बना रहता हुआ देखने को मिला।

इन सभी प्रकार की चर्चाओ को सुनते हुए आगे जितने भी माध्यमों को देखा उन सब में सर्वाधिक अपराध और श्रृंगारिकता का प्रचार होते आये। ये सब माध्यम कहीं न कहीं रास्ते से भटके है अथवा रास्ता मिला ही नहीं है। मानव इतिहास के अनुसार अभी तक मानवीयता पूर्ण दिशा अथवा मानव सहज दिशा अथवा जनाकांक्षा किसी परम्परा में स्थापित नहीं हो पायी। जनाकांक्षा अथवा मानवाकांक्षा का स्वरूप में निरीक्षण परीक्षण सर्वेक्षण करने पर पता चला कि हर मानव, हर परिवार, हर समुदाय समाधान समृद्धि अभय, सहअस्तित्व को वरता है। वरने का तात्पर्य सुनने मात्र से ही कोई भूला हुआ चीज को स्मरण में ला लेना और स्वीकार लेने से है। वर लिया है-का तात्पर्य पहले से ही इन आकाँक्षाओ से सम्पन्न रहने से भी है। इस क्रम में आकांक्षा और जनप्रवृतियों का निरीक्षण परीक्षण सर्वेक्षण विधि को अपनाने से अंतर्विरोध, विपरीत परिस्थितियाँ होता हुआ देखा गया। इसे हर व्यक्ति परीक्षण कर देख सकता है।

अंतर्विरोध सविपरीत परिस्थितियों को मानव में निहित संवेदनशीलता अपेक्षित

संभावित संज्ञानशीलता को विपरीत ध्रुवो के रूप में देखा गया। यह हर व्यक्ति अपने में और अन्य व्यक्तियों में देखने की व्यवस्था सदा सदा समीचीन है। समीचीनता का तात्पर्य सहजता से सुलभ होने की संभावना से है अथवा पास में है और प्रयोग करना ही एक मात्र कार्य है। संज्ञानशीलता विधि से ही हर व्यक्ति समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को सर्वशुभ के अर्थ में स्वीकारता है जबकि संवेदनशीलता विधि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधेन्द्रियों के अनुकूलता, प्रतिकूलता क्रम मे ही संग्रह सुविधा भोग अतिभोग की ओर ग्रसित होता हुआ समुदायो, परिवारो और व्यक्तियों को देखा गया है। बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक में भारत में सर्वेक्षण विधि से निरीक्षण करने पर पता चला है कि सौ व्यक्तियों को हम पूछते है कि सर्वशुभ होना चाहिये कि नहीं ? और आगे विचार और कार्यक्रम होना चाहिये कि नहीं ? ऐसा पूछने पर 90 से अधिक लोग तुरंत स्वीकारते है सर्वशुभ होना चाहिये। विचार और कार्यक्रम होना चाहिये या नहीं - इस मुद्‌दे पर प्रतिशत निकालने पर पता चला 80 प्रतिशत होना चाहिये, इस बात को स्वीकारते हैं।

जब दूसरे प्रश्न को दो भागो में बाँटते है - कार्यक्रम होना चाहिये कि नहीं, तब इस स्थिति में 60 प्रतिशत लोग सहमत हो पाते हैं। बाकी लोगो में आगे बिना पूछे ही अधिकांश लोग अपने में से बताते है कि ये हो ही नहीं सकता है कर ही नहीं सकते हैं। ऐसे ही किसी किसी से सुनने को मिलता है वह भी विशेष कर अध्यात्मवादी खेमे में जीते हुए लोग कहते हैं कई अवतार हो गये कई महापुरूष हुए, सिद्ध हुए, तपस्वी हुए, चमत्कारी हुए, यति-सति हुए, ईश्वर दूत और ज्ञानी हुए ऐसे अनगिनत लोग होते हुए अभी तक सर्वशुभ घटित हुआ नहीं है। भौतिकवादी खेमे के माहिरो से पूछने पर यही कहते है ये सब सोचने की कहाँ जरूरत है। मोटी तनख्वाह वाला नौकरी, चमकता हुआ गाड़ी, सर्व सुविधा पूर्ण महल और जो इच्छा हुआ वो सब भोगने को ही सुख का स्रोत बताते हैं। सबको आप जैसी सुविधा नहीं मिलने पर छीना झपटी करेंगे, ये पूछने पर वे कहते है संघर्ष तो करना ही पड़ेगा। उसे नाम देते है लाइफइज स्ट्रगल। साथ में यह भी बताया करते है कि बेटर लाइफ के लिये स्ट्रगल आवश्यक है। संघर्ष और उससे बनने वाले परेशानियो की ओर ध्यान दिलाने पर बताते है कि प्रकृति में ही अतंर्द्वन्द है इसलिए संघर्ष करना स्वाभाविक है। संघर्ष की अन्तिम मंजिल भी यही बताते हैं जो ज्यादा मजबूत होता है वही अस्तित्व को बनाए रखने में समर्थ होता है। ये सब अधिकांश मेंधावियो को विदित है ही। शुभेच्छा से विज्ञान को जो अध्ययन किये हुए लोग और विज्ञान पढ़ा हुआ युवा पीढ़ी विज्ञान की गति किसी काला दीवाल के सामने पहुंचना देख चुके है। ऐसे लोग तत्काल

सर्वशुभ के लिये सहमत होते हैं, हुए हैं और सर्वशुभ साकार होने के लिए आवश्यकीय कार्य, व्यवहार, विचार, अनुभव अनुभव प्रमाणो के साथ जीने में तत्पर हो चुके हैं। इस मुद्दे को इसलिए यहाँ स्पष्ट किया गया कि रहस्यमयी ईश्वरवादी और भौतिकवादी (संघर्ष केन्द्रित) विधियों से मानव का अध्ययन मानव के लिये सन्तुष्टिदायक नहीं हो पाता है।

अतएव संवेदनशील चर्चा आदि मानव ने जब से शब्दो द्वारा या भाषा द्वारा एक दूसरे के लिए निश्चित संकेतों को प्रसारित करना शुरू किया, तब से अभी तक इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक अथवा संवेदनशील चर्चाओ को कहते-सुनते, लिखते-पढ़ते ही आया है। अन्य चर्चाए जो कुछ भी है, इन्द्रिय सन्निकर्ष के सीमा में ही स्वर्ग-नर्क आदि रोमांचक चर्चा, परिकथा, उपन्यासो को गढ़ा हुआ दिखाई पड़ती है। यह भी मेघावियो को विदित है, इस प्रकार जन प्रवृति इन्द्रिय सन्निकर्ष और उससे सम्बंधित घटनाओ के वर्णन में ही परिसीमित रहना सुस्पष्ट है। इस धरती पर आज की स्थिति में 600-700 करोड़ आदमी विद्यमान है क्क। हर आदमी ज्यादा से ज्यादा जीने के लिए इच्छुक, कम से कम उत्पादन कार्य में भाग लेने का इच्छुक, अधिकाधिक सुविधा-संग्रह को एकत्रित करने के लिये इच्छुक, अतिभोग बहुभोग के लिए इच्छुक होता हुआ देखने को मिल रहा है। सन 1950 से हर दशक में इस मानसिकता से सम्पन्न व्यक्तियो की संख्या में वृद्धि होती हुई बीसवीं शताब्दी के इस दशक में 45 से 50% व्यक्ति इस प्रवृति में आ चुके हैं। इसमें अपने सार्थकता वैभव और महिमा की पहचान बनाने के लिये प्रयत्नशील होते हुए देखने को मिल रहे है। इसी के साथ साथ यह भी एक परिस्थिति जन्म चुकी है कि अधिकांश लोगो ने उत्पादन कार्य में भागीदारी की आवश्यकता को मान लिया है। जबकि इस स्थिति में मानव के लिए उत्पादन कार्य के लिए प्रवृति घटती जा रही है। अतएव आज की स्थिति में कुछ विडम्बनाएँ जनचर्चा के रूप में समावेशित हुई है।

क्रमागत विधि से मानव की आवश्यकताएँ हर दिन बढ़ती आई। इस मुद्दे पर हमारा अनुभव है कि सन 1950 में प्रौद्योकिकी विधि से आवश्यकीय वस्तु की संख्या जितनी भी रही, वह सब बढ़कर वस्तुओं की संख्या सन 1995 तक 10 गुणा अधिक हो चुकी है इसमे से सुंविधावादी वस्तुएँ ज्यादा बढ़ती गयी और सभी माध्यम भोग मानसिकता को बढ़ावा देने में उद्यत हो गये। संवेदनशील विधि से जो कुछ भी किया जा सकता है, वह सब अधिकतम कर चुके। प्रकारान्तर से जनमानस में चर्चा का विषय यही बना रहा। यह सब धरती के साथ, नैसर्गिकता के साथ, मानव प्रकृति के साथ द्रोह, विद्रोह, शोषण,

करने के परिणाम में सुविधाजनक सामग्रियों की संख्या-तादाद बढ़ता ही आया। भोगवादी मानसिकता मे संग्रह की वितृष्णा इस शताब्दी के मध्य भाग से सर्वाधिक 100 गुणा से अधिक प्यास बढ़ चुकी।

जनचर्चा में सुविधा संग्रह का सर्वाधिक बोलबाला इस बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देखने को मिला। इस विधि से यह भी इस समय के मेधावियों को पता लग चुका है कि सब को इतना सुविधा संग्रह, मिलना संभव है ही नहीं। प्रौद्योगिकी और उसके लिए उर्जा स्रोत रूपी खनिज कोयला और तेल का दोहन सदा-सदा से, जब से वैज्ञानिक युग आरम्भ हुआ तब से दिन दूना रात चौगुना होता ही आया है। इन सब के परिणाम में जनचर्चा में यह भी देखा गया, वस्तु संग्रह की ओर सर्वाधिक लगाव का संकट पीड़ित हुआ, स्थिति को भी आज देखा जा रहा है। उक्त मुद्दो पर अर्थात संवेदनशील विधि से जितने भी मुद्दे पर हम अपने में गतिशील होने में समर्थ हुए वह सब किसी न किसी अव्यवस्था के चक्कर में ही फँसता रहा। यह भी देखने सुनने में मिल रहा है अनुसंधान शोध में इन बातो की झलक आ रही है, हमें किसी सार्वभौम व्यक्तित्व रूपी मानव अथवा नर-नारी को पहचानना ही होगा, उसे लोक-व्यापीकरण करने के लिए सार्थक कार्यक्रम की आवश्यकता है। इसी क्रम में श्रेष्ठतम प्रौद्योगिकी शिक्षण संस्थाओ में भी मूल्यों की चर्चा पर पहले पहल करना भी आज के एक कार्यक्रम के रूप में देखने को मिल रहा है।

मूल्यों के संदर्भ में जनचर्चा प्रकारान्तर से सुनने को मिलता ही रहा। इस शताब्दी के मध्यकाल से अंतिम चरण तक जो देखा गया, उसका प्रधान मुद्दा शासित रहना मूल्य रक्षा के स्वरूप में सुनने में आती रही। जैसे रूढ़ियाँ, परम्परा, नाच-गाना, कपड़ा-आभूषणो का पहनावा, नित्यकर्म, नैमित्यिक कर्म को मूल्य रक्षा का प्रमाण माना जाता रहा। मान्यताओं पर आधारित कर्म आचरण रूपी अनेक रूढ़ियाँ, अनेक परम्परा के रूप में इस धरती पर समायी। विज्ञान युग का प्रभाव इन परम्पराओं को इस शताब्दी के अंत तक अत्यधिक प्रभावित किया। इस प्रभाव का सार प्रक्रिया दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, दूर-गमन संबंधी प्रयोग और जन सुलभीकरण कार्य में प्रसक्त हो चुकी थी। इसी के साथ यह भी घटना घटित हो चुकी थी कि परमाणु विस्फोट से विध्वंसकता कितनी हो सकती है वह भी एक ऑकलन के रूप में आ चुकी थी। हर गोष्ठी-संगोष्ठी में विज्ञान वेत्ता भी परमाणु विस्फोट के विध्वंसक कार्यो को सम्मति नहीं दे पाते थे, अपितु शान्तिपूर्ण कार्यो में प्रयोग की प्रस्तावना करते रहे। मध्यमवर्गीय लोगो के मन में भी ऐसी ही स्वीकृतियाँ होती रही और आशावादी विधि से, इस प्रकार संवाद करता हुआ मिला कि धरती में ऊर्जा

की कहीं कमी नहीं है। परमाणु ऊर्जा अकूत है, विध्वंसात्मक विधि ठीक नहीं है यह उदगार विज्ञान के उस आरम्भिक अस्मिता को बढ़ावा देता रहा कि ''प्रकृति पर विजय पाने के लिए विज्ञान का उपयोग है। इस क्रमागत विधि से इस शताब्दी के सातवें दशक तक परमाणु ईंधन की सहायता से इस धरती से आकाश यान चाँद पर पहुँच गया। एक विधि से यंत्र से मानव भी पहुँचा, दूसरे विधि से केवल यंत्र पहुँचा। दोनो विधि से किये गये प्रयोग वहाँ पानी, प्राणवायु, वनस्पति संसार, जीव संसार स्थापित न होने का निष्कर्ष था। वहाँ के मिट्टी, पत्थर संग्रह करने के उपरान्त भी वहाँ से (चंद्रमा से) कुछ पाने का आसार नहीं बन पाया। ये सब जनचर्चा में आ चुकी थी। आज भी प्रकारान्तर से बनी हुई है।

जनचर्चा में विज्ञान संसार के चमत्कारो की चर्चा बारम्बार होती रहती है। विज्ञान संसार का तात्पर्य किसी घटना को विश्लेषित करने में समर्थ होना। इसकी अभीप्सा उस घटना को मानव घटित कराने का भरोसा विज्ञान की अस्मिता रही। इस क्रम में मानव और जीवो से अधिक गति के लिये चक्र (पहिये) पर बैठकर चलना ही मुख्य बात रही। चक्र पर सजा हुआ यान-वाहन को खींच ले जाने के लिए यंत्र स्थापित हुए। इन यंत्रों में से तीन प्रजाति प्रधानत: देखने को मिलती है। एक वाष्प विधि से, दूसरा तेल-ईंधन विधि से और तीसरा विद्युत चुम्बकीय उर्जा नियोजन विधि से चालित होता हुआ, प्रमाणित हो चुका है। इन सब ईंधन विधियो के साथ परमाणु उर्जा अर्थात परमाणु विस्फोट नियोजन को भी मानव परम्परा अपना चुका है। सर्वधर्म चर्चाओ में मानव को तार्किक जानवर के रूप में ही निरूपित करते आये। मानव के संदर्भ में विज्ञान प्रयोगो और विचारो को चलने का निष्कर्ष इतना ही निकला मानव जाति ईश्वरीय कानून को पालन करने योग्य वस्तु है इसी से मानव का कल्याण होता है। ऐसा कहने वाले सब महापुरूषो की गणना में आते रहे। महापुरूषो की गणना सामान्य मानव ही करते रहे। यही विडंबना रही। ऐसा बताने वाले को अवतार, ईश्वर का दूत आदि नामो से भी सम्बोधन किये। आज भी ये सब आवाजे सुनने मिलती है। पहले ज्यादा मिलती थी। ईश्वरीय कानून परस्ती मानसिकता शनै: शनै: शिथिल होती रही। यह इस शताब्दी के आरंभिक दशक से ही क्षतिग्रस्त होते आया। इस अन्तिम दशक में यह देखने को मिल रहा है कि विभिन्न देशो मे स्थित, ज्यादा से ज्यादा मुद्रा संग्रह किया हुआ लोग विभिन्न पंथ परम्परा में कहे गये ईश्वरीय कानून की रक्षा करने के लिए उनके अनुसार स्मारको को मिट्टी पत्थर लोहा सीमेन्ट से निर्मित करता हुआ, पैसा देता हुआ देखने को मिला। इसमे लेने वाला लेकर के बहुत उत्साही दीखते है। देने वाला देकर भी प्रसन्न दिखते है। चाहे ये दोनो जितने भी प्रसन्न रहे, ऊपर कहे गये

द्रव्यो से ही सभी स्मारक बना हुआ है। इसका विश्लेषण समीक्षा में अल्प आंशिक लोगो के बीच यह भी चर्चा सुनने को मिलता है ये सभी स्मारक मानव में मतभेदो का अड्डा है। आस्था के साथ-साथ किसी एक समुदाय में आस्था की प्रेरणा स्थली दूसरे समुदायो के लिए द्वेष की स्थली है। इस प्रकार से सोचने वाली की संख्या वृद्धि हो रही है।

इसी क्रम में मूल्यों की चर्चा की स्थली उक्त प्रकार की जनचर्चा से निकलती है कि सुविधा संग्रह, भोग-अतिभोग,बहुभोग जो कुछ भी विपरीत सविपरीत घटनाएँ घटती है। उन सब को मूल्य बताया जा रहा है। इसी प्रकार आस्था, द्वेष, भय, प्रलोभन, ईश्वरीय कानून परस्ती विधि से किया गया जितने भी द्रोह, विद्रोह, शोषण को और उसके विपरीत क्रिया को मूल्य बताया जाता है और इन ख्याति को शिक्षा में समावेश करने के लिए गोष्ठी भी करते है। युद्ध संबंधी विजय, पराजय और उसकी ख्याति पर बहुत सारी जनचर्चा हो चुकी है। जनचर्चा में यह भी सुनने को मिलता ही रहा कि जितने भी अवांछित-वांछित क्रियाकलाप, फल परिणामों को कला का नाम देते रहे, शनैः शनैः कुछ विद्वान कहलाने वालो के मुँह से यह भी सुनने को आया कि बीड़ी, दारू, चोरी करना भी मूल्य है और इनको न करना भी मूल्य है। इस प्रकार चर्चाओ का बदहाल, बदहाल का मतलब कुछ भी नहीं पाना, हम बहुत कुछ सुन चुके है, और भी बहुत कुछ सुनने की संभावना है ही।

परिकथाओं में जीव जानवर, पक्षी से अनेकानेक भूत-भविष्य का वर्णन करने वाली और ज्ञानार्जन करने की अनेक कथा मानव लिख चुके है। उन कथाओं में यही प्रभाव मनःपटल पर होना पाया गया कि मानव से जीव जानवर कहीं ज्यादा अच्छे हैं। ये सुनने के उपरान्त हम अपने में विचार करने लगे कि मानव की जरूरत ही क्या रही ? इस धरती पर भार रूप होने के लिए ? धरती को उजाड़ने के लिए ? अथवा धरती पर जितने भी कार्यकलाप फल परिणाम हैं दुःख, पीड़ा, कुंठा, निराशा के रूप में त्रस्त होने के लिये है। निष्कर्ष यही हुआ इतने लंबे चौड़े विधाओ में और अनेक विधाओ में दौड़ता हुआ मन लोकमानस है। वैसा ही मेरा मन में भी होना पहचाना। इसी आधार पर मेरा मन सदा-सदा से, जब से शरीर संवेदनाएँ स्पष्ट होने लगी है तब से ही सुरक्षा को चाहने वालो मे से पहचाना यदि पहले कही हुई पीड़ाएँ नियति है, मुझे सुरक्षा की आवश्यकता क्यों महसूस हो रही है ? इस विधि से मानसिक रूप में उठी उर्मि अनेको प्रकार में फँसते-फँसते अंतिम निश्चयन यही आया कि विगत के सभी अनिश्चयात्मक कुंठा त्रासदी दुख को स्वीकारने योग्य जितने चर्चाए समुदाय-परम्परा में जन परम्परा में प्रचलित है प्रभावित है ये सब निरर्थक है। इसमें फँसने के उपरान्त हर व्यक्ति अपने मानसिकता के रूप में त्रस्त होना

निश्चित है। इसी के साथ इतना सब प्रक्रियाएँ मानसिक रूप से गुजरने के बाद इस निश्चय पर पहुँचा कि जनमानस में निश्चयों-निर्णयों समाधान और सार्थकता के आधार पर जनसंवाद की आवश्यकता है । इस जन शब्द के अर्थ के अर्न्तगत मैं अपने को भी पहचाना। फलस्वरूप कैसे चर्चाए होना चाहिये इस विशाल सोच की जगह में हम पहुँच गये।

इस क्रम में सोच विचार के अभ्यास क्रम में अस्तित्व को मूलत: समझने के लिए तत्पर हुए। अस्तित्व स्वयं में से प्रश्न और उत्तर संबंध मेरे से ही उदय हुआ ? मेरा होना ही मेरा अस्तित्व है यह पता चला। तर्क संगत विधि से सबका होना भी अस्तित्व है। और उसकी यथार्थताओं को परिशीलन करते करते यह पाया कि अस्तित्व स्वयं व्यापक वस्तु में संपृक्त अनंत इकाइयों का वैभव है। यह वैभव वर्गीकृत विधि से होना हमे स्पष्ट हो गया। जिसमें से मानव भी एक वर्ग का अवतरण है। इस अर्थ में कि इस धरती पर वैभव है। मानव को हम ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में पहचाने। ज्ञानावस्था का मूलरूप में ज्ञान की सम्पूर्णता को समझदारी नाम दिया। सहअस्तित्व रूप में अध्ययन करने पर देखा गया कि जितने भी वर्गों द्वारा इस धरती पर सहअस्तित्व का वैभव प्रमाणित हुआ है सभी परस्परता में पूरकता विधि से जुड़ी हुई परम्परा के रूप में हैं। इसी प्रकार मानव भी पूरे विधाओ से जुड़ा हुआ स्पष्ट हुआ। इसी आधार पर जनसंवाद का एक रूप रेखा बनी, वह आगे प्रस्तुत है।

जनसंवाद में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व शाश्वत, नित्य, अक्षुण्ण होने के रूप में संवाद एवं साहित्य सृजन का होना एक आवश्यकता है। मूलत: होने के आधार पर ही हर निश्चयन की आवश्यकता हर नर-नारी में समझ होना आवश्यक है। स्वयं का होना ही इसका आधार है। होने की ही स्वीकृति होती है। क्योंकि हर नर-नारी, हर आयुवर्ग में स्वयं का होना स्वीकारे ही रहते है। यह जनसंवाद में सुदृढ़ होने की आवश्यकता है। सब कुछ होने की पुष्टि धरती पर हम रहते ही है। जलवायु, अन्न, वनस्पति का सेवन करते ही है। ये सब चीज होने के आधार पर सार्थक होना देखने को मिलता है। जंगल झाड़ी का होना हमें समझ में आता है, इनके प्रयोजनो को एक दूसरे के संवाद में पहचान पाना, स्वीकार कर पाना सार्थक मुद्दा है। उससे ज्यादा सार्थक यही है जंगल, झाड़ी, धरती, हवा, पानी के सम्बंधो का पहचानना व निर्वाह कर पाना। संतुलन की बात यही से शुरू होती है। इन सब के साथ हमारा होना निश्चित होता ही है। इनके साथ हमारा संतुलन सूत्र क्या है ? यह भी एक चर्चा का मुद्दा बनता है। परम्परात्मक विधि से ही हम मानव इसी

धरती पर उक्त सभी नैसर्गिकता के साथ होते हुए आए। नैसर्गिकताओं से मानव पर जो उपकार होता आया है वह स्वीकार हुआ है। जो प्रतिकूल होता है अस्वीकार होता है। जैसे हवा, पानी, अधिक होने से या कम होने से अनुकुलता या प्रतिकूलता की स्वीकृति मानव में होती है। ये हर मानव अच्छी तरह से स्वीकार सकता है। जो हम स्वीकारे रहते हैं वही संवाद में आना स्वाभाविक है। सार्थक स्वीकृतियाँ सार्थकता के अर्थ में प्रभावित होना पाया जाता है।

सर्वमानव में सार्थकताएं स्वीकृति के रूप में समाधान, समृद्धि, अभय सहस्तित्व के रूप में होना पाया जाता है। संवाद, तर्क का उद्देश्य किसी निर्णय पर पहुँचने का ही सूत्र है। आदिकाल से ये आशय रहा है हर नर-नारी का उद्देश्य सर्वभौम रूप में पहचान न होने से ही इन्द्रिय सन्निकर्ष के लिए अनुकूलता प्रतिकूलता को केन्द्र बनाकर जनचर्चा सम्पन्न होती आई। जबकि सर्वमानव की ज्ञान विवेक विज्ञान सम्पन्न व्यवहार प्रतिष्ठा और कर्म-प्रतिष्ठा के आधार पर ही पहचान हो पाती है। इन दोनो विधाओ के रूप मे विचार, स्वीकृति, निश्चयन, मानव में समाहित रहने की आवश्यकता पायी जाती है। इनके परिष्कृति के आधार पर ही कर्म-प्रतिष्ठा और व्यवहार प्रतिष्ठा संकीर्ण और विशाल, सार्वभौम और व्यक्तिवादी होना पहचाना जाता है। मूलत: सहअस्तित्व स्वीकृत होने के आधार पर जो भी दृष्यमान है, जो भी समझ में आता है, जो भी करने-कराने, सीखने-सिखाने, समझने-समझाने को प्रवृति होती है ये सब उद्देश्यों के आधार पर ही प्रवर्तित होना देखा जाता है। जैसे अभी पढ़ने को गौरवमयी, आवश्यकीय कृत्य के रूप में हर मानव स्वीकारा हुआ है। अति प्राचीन-जितने भी शिक्षक रहे है वे सम्मान, पारितोष पाने के अर्थ में ही अथवा पुरस्कृत होने के अर्थ में ही प्रवर्तित रहे। वही शिक्षक अब वेतन भोगिता के रूप में प्रतिफल मान्यता को स्वीकारते हैं। आज भी अर्थात सन 2000 के अवधि में भी यही उद्देश्य स्वीकृत है।

आज की स्थिति में सम्पूर्ण शिक्षा, नौकरी, व्यापार, प्राद्यौगिकीय प्रवृति के रूप में प्रवर्तित होता हुआ देखने को मिल रहा है। प्राद्यौगिकीयता में सभी उत्पादन कार्य जहाँ तक जनोपयोगी है वह सब सार्थक होना स्पष्ट है। इन सभी उत्पादनीयता के पक्ष में जनसंवाद, हर उत्पादन की पवित्रता, सटीकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता के अर्थ में संवाद की आवश्यकता है ही। जनसंवाद एक अनुस्युत क्रिया है यह मूलत: आज भी आगे भी मनाकार को साकार करने के अर्थ में है। इसी क्रम में विविध प्रयास, शोध योजनाएँ, प्राद्यौगिकी, उत्पादन के अर्थ में जनकार्य स्थली तक पहुंच चुका है। इसमें बहुत सारे लोग

भागीदीरी कर ही रहे है। प्राद्यौगिकी की नौकरी, व्यापार ये सभी लाभोन्मादिता के रूप में उन्मुख, प्रवर्तित, कार्यरत होता हुआ देखने को मिलता है। यही मुख्य मुद्दा है जिसको देखने वाले सभी इन तीनो कार्यो में नहीं है या ये तीनो कार्य मिला नहीं है ऐसे सभी इनके प्रवृतियों को देखकर अपने गरीबी को अधिमूल्यन करते हुए त्रस्त होता हुआ देखने को मिलता है । जनसंवाद में होना क्या चाहिये ? इस पर निष्कर्षो को निकालने की आवश्यकता है। साथ में उपर कहे हुए विधाओ के अनुसार विश्लेषण आवश्यक है। इस प्रकार जनसंवाद विश्लेषण और निष्कर्ष के रूप में सार्थकता के अर्थ में प्रेरक होना आवश्यक है।

यह भी देखा गया है कि जहाँ तक अर्थ पक्ष है ज्यादा कम के रूप में ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों के परस्परता मे संवाद, विचार, स्वीकृतियाँ है। इस पर सर्वेक्षण निरीक्षण, अध्ययनपूर्वक यह तथ्य पाया गया कि यह संवाद केवल प्यास को बढ़ाने के अर्थ में ही हुआ। गणितीय भाषा मे 2 है तो 4 चाहिए, 4 है तो 4000 चाहिये 4 अरब चाहिए यही प्यास है। प्यास सन्तुष्टि का अर्थ नहीं होती। अपने को कम होना पाते है उनके मन में यह भ्रम होता है कि ज्यादा धन जिसके पास है वह सुखी है जबकि वे ऐसे रहते नहीं है। उनका प्यास पीछे वाले से बहुत ज्यादा ही रहता है। जितना ज्यादा धन रहता है उतना ही ज्यादा (अनेक गुणा का) प्यास बनता है ऐसा प्यास त्रासदी है। इसको हर व्यक्ति निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण कर सकता है चाहे गाँव हो, परिवार हो, बंधु हो, बांधव हो, पहचान का हो, पहचान का न हो। सब जगह यही पाते हैं। समुदाय की परस्परता से और देश-देश की, राज्य-राज्य की, परस्परता में भी यही, प्यास का झंझट बना रहता है। जनप्रतिनिधि और जन सम्मानित व्यक्तियों में भी यह प्यास पायी जाती है। सभी संस्था और व्यक्ति लाभोन्माद से मुक्त नहीं है। लाभोन्माद का मतलब ही है, और चाहिये, और चाहिये और चाहिये। इसी का नाम प्यास है। धन की प्यास से पीड़ित आदमी सन्तुष्ट होना, सुखी होना समाधानित होना संभव है ही नहीं। इस प्रकार धन पिपासा हर व्यक्ति को त्रस्त किया ही है। इसी आधार पर हर संस्था भी इसी चक्र में फँसी हुई दिखाई पड़ती है। इन घटनाओं से हमें समझ में यह आता है कहीं न कहीं इसका तृप्ति बिन्दु तो चाहिए। धन पिपासा दो ही बिन्दु, सुविधा और संग्रह के अर्थ में देखने को मिलती है। इस क्रम में संस्थाएँ कहलाने वाले चाहे राज्य संस्था हो, धर्म संस्था हो, अथवा समाज सेवी संस्था हो, इन संस्थाओ में धन की संतुष्टि होती ही नहीं। सुदूर विगत से यह प्रक्रिया संपन्न होते आयी।

इस धरती पर अनेक स्थानो पर ऐसे खंडहर, इमारत, स्मारक दिखाई पड़ते हैं। और

बड़े बड़े किले देखने को मिलते है ये सब अपनी सुविधा सुरक्षा और स्मरणार्थ की गयी रचनाओं की गवाही है। राज्य मानसिकता के काल में बड़े बड़े किले बना कर किले में निवास करने वालो को सुरक्षित माना जाता रहा यह परस्पर युद्ध मानसिकता से जुड़ी हुई कृत्यो के परिणामों के स्वरूप में आज भी स्मरण दिलाया करते है।

युद्ध मानसिकता से कही पहुँच पायेगे ? इसका उत्तर यही मिलता है इसकी कोई गम्य स्थली नहीं है। युद्ध से युद्ध की ही परियोजना है। यद्यपि कहा जाता है युद्ध शान्ति के लिए किन्तु ऐसी स्थिति कभी घटित हुई नहीं है। यह अवश्य हुआ है विगत में जनमानस में युद्ध और संघर्ष की जितनी प्राथमिकता रही उतना आज की स्थिति में नहीं है। आज भी किसी प्रथमिकता में भले चौथे-पाँचवे हो युद्ध संघर्ष की स्वीकृतियाँ सुरक्षा, परिवार रक्षा, देश रक्षा, राज्य रक्षा के अर्थ में स्वीकार होते हुए देखने को मिलती है। इस रक्षा विधियो में समरतंत्र को पंजीकरण किये जाने की विधि से अंतविहीन युद्धतांत्रिक सामग्री और प्रयोग परिणाम की चर्चा-संवाद जनमानस तक आ चुकी है। युद्ध में जितना भी धन नियोजन हुआ है उस मुद्दे पर जितना भी संवाद किया जाता है, किया गया है, उसमें युद्ध और उसके लिए धन का नियोजन निरर्थकता मे ही समीक्षित हो पाता है। सार्थकता की ओर पहला मुद्दा यही है मानव कुल में युद्ध मुक्ति हो। पुनश्च प्रश्न चिन्ह होता है - युद्ध मुक्ति का आधार स्रोत क्या है ? यहाँ पहुंचने पर यही आवाज निकलती है मानव को अध्ययन पूर्वक सटीक पहचाना जाए। जब तक समुदाय वर्गो व्यक्ति वाद के रूप में मानव जाति को पहचाना जाता रहेगा, तब तक युद्ध मुक्ति नहीं है। अतएव इसका उपाय यही है कि मानव अपने स्वरूप में समुदाय सीमाओ से मुक्त सर्व मानव एक इकाई है। चूँकि मानव शरीर सप्त धातुओ से रचित रहता है चाहे काले-पीले-भूरे या गोरे आदमी हो ठिगना हो, उँचा हो, मोटा या दुबला हो। इन सबमें सप्त धातुओं का निश्चित अनुपात देखने को मिलता है। शरीर रचना विधि हर भूरे, हर काले, हर गोरे में समान रूप में पहचानने में आता है।

मानव के हर रंग रूप सम्बन्ध मे समानता संवाद का दूसरा मुद्दा बनता है कि हर मानव अपने पहचान को बनाए रखने के लिए बाल्यकाल से ही प्रयत्नशील है। पहचान प्रस्तुत करने की प्रवृतियाँ विभिन्न तरीके से प्रस्तुत होती हुई आंकलित होती है। परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न रहते हुए प्रवृतियों में समानता होती ही है। इसी के साथ बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक संरक्षण में पोषण में भरोसा रखने वाली प्रवृत्ति मिलती है। संरक्षण पोषण के क्रम में न्याय की अपेक्षा प्रस्फुटित होती हुई देखने को मिलती है। किशोर अवस्था तक सही कार्य व्यवहार करने की इच्छाएँ आज्ञापालन, अनुसरण, सहयोग

के अनुकरण के रूप में प्रवृत्तियों को देखा जाता है। यह बहुत अच्छे ढंग से समझ में आता है। यह जन चर्चा का विषय है। संवाद के लिए ये दोनो मुद्‌दों अच्छे ढ़ंग से सोचने, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण करने व्यवहार विधि से विचारो को सम्बद्ध करने में काफी उपकारी हो सकते है। तीसरा मुद्‌दा देखने को मिलता है कि हर मानव संतान शिशुकाल से ही जब से बोलना जानता है तब से जो भी देखा सुना रहता है उसी को बोलने में अभ्यस्त रहता है। इस ढ़ंग से हर मानव संतान बाल्यकाल से ही सत्य वक्ता होना आकलित होता है। जबकि सत्यबोध उनमें रहता नहीं है। शब्दों को बोलना ही बना रहता है। इससे यह भी पता लगता है मानव परम्परा का दायित्व है कि मानव संतान को सत्य बोध करायें। इसी के साथ सही कार्य, व्यवहार का प्रयोजन बोध सहित पारंगत बनाने की आवश्यकता है। न्याय बोध हर संतान को कराने का दायित्व परम्परा के पक्ष में ही जाता है। इस ढंग से बच्चों के लिए प्रेरक साहित्यो, कविताओ की रचना करने के लिए ये तीनों सार्थक प्रवृतियाँ है मानव में प्रवृतियाँ प्रयोग और परीक्षण बहुआयामो में होना देखा गया है। ये सब जन चर्चा के लिए बिन्दुएं है। इसका निरीक्षण विधि से सोच समझ विधि से संवाद होना मानव के लिए शुभ है। संवाद की सार्थकता को पहले से ही हम स्वीकार चुके है कि सार्थकता के अर्थ में ही मानव संवाद उपकारी होगा। क्योंकि जितने भी संघर्ष के लिए, युद्ध के लिए, द्रोह-विद्रोह, साम-दाम-दंड-भेद रूपी कूटनीति के लिए, भय और प्रलोभन के लिए संवाद मानव ने किया सुदूर विगत से और अनेक कथा-परिकथा, प्रहसन, माध्यम सब कुछ प्रयोग हुआ, सार्थकता शून्य रहा। क्योंकि ये सभी उपक्रम समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को सर्वसुलभ कराने की ओर सार्थक नहीं हो पाया। इतना ही नहीं स्वर्ग, नर्क, पाप-पुण्य के साथ ही बहुत कुछ कथा-परिकथा, जन चर्चाएँ सम्पन्न हुई। यह भी मानव आकांक्षा के अनुसार जो गम्यस्थली है वहाँ तक पहुंचाने में, पहुंचने में सर्वथा असमर्थ रही। और आगे भक्ति विरक्ति की ओर भी काफी उपदेश कथाएँ, पुण्य कथाएँ मानव कुल में प्रचलित रही। यह भी मानवापेक्षा सर्व सुख शांति की ओर कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पायी।

आज की स्थिति में सर्वमानव अथवा सर्वाधिक मानव सुविधा-संग्रह के अर्थ में, लक्ष्य में ही चर्चा, परिचर्चा, योजना, परियोजना की बाते सुनने में आ रही है। अभी से भी समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व की ओर दिशा नहीं पा रहे हैं। इसलिए जनमानस में परिवर्ती विद्या में संवाद की अपेक्षा आवश्यकता उत्पन्न होती है। क्या परिवर्तन के लिए शुरूआत करे इसके लिए मानवाकाँक्षा ही ध्रुव बिन्दु आती है। मानवाकांक्षा सर्वमानव में

स्वीकृत है। इसे सर्वेक्षण पूर्वक भी निष्कर्ष निकाल सकते है। समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व के रूप मे प्रमाणित होने के लिए सहमति सर्वमानव में अथवा सर्वाधिक मानव में होता ही है। इसी आधार पर जनसंवाद को मानवापेक्षा के ध्रुवो के ऊपर गतिशील बनाए रखने के लिए आवश्यकता बनती है। इसी आशय से हर नर-नारी सभी मुद्दो को दिशा देने मे प्रवर्तित हो सकते है। यही जनसंवाद का आधार और प्रवृति है। प्रवृति ही निश्चित दिशा को पाकर अपनी गति को निष्कर्ष के स्थली तक पहुँचा पाती है। निष्कर्ष के अनंतर ही योजना, कार्ययोजना स्पष्ट हो पाते है। फलस्वरूप मानवाकाँक्षा को हम प्रमाणित करने योग्य हो जाते है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का आशय है।

मानवाकांक्षा के सार्थकता के अर्थ में ही जनसंवादो की सार्थकता को पहचानने की आवश्यकता है। इसमें सर्वप्रथम व्यवहार मे ही सार्थक होने की बात आती है। व्यवहार में सार्थक होने के लिए संवाद में इस तथ्य को पहचाना जा सकता है कि परस्परता में ही व्यवहार होता है और प्राकृतिक ऐश्वर्य और मानव की परस्परता में ही उत्पादन कार्य सम्पन्न होता है।

व्यवहार कार्यकलाप में, उत्पादन कार्यकलाप में अनेकानेक विधाएँ जनसंवाद के लिए विषय बन जाती हैं। सबंध एक मुद्दा है यह सहअस्तित्व में ही प्रमाणित होना पाया जाता है। धरती, हवा, पानी, जंगल, पहाड़ वन, वनस्पति, अन्न, औषधियो के साथ, परस्पर, सहअस्तित्व होना पाया जाता है। इतना ही नहीं सूरज, चाँद, सौर व्यूह, आकाश गंगा के साथ मानव का सहअस्तित्व है ही। इन सभी विधाओं मे मानवसंवाद अपने लक्ष्य के अर्थ मे होने की आवश्यकता है।

सर्वप्रथम मानव की परस्परता में मानवकुल अनेक रंग, नस्ल के रूप में पहचाना जाता है। ऐसी परस्परताएँ जीव संसार रूपी अस्तित्व में रहती ही है। परस्परताएँ सहअस्तित्व सहज है। सहअस्तित्व में हम परस्परता को पाते है इसी क्रम मे मानव में, से, के लिए अखण्ड समाज में परस्परताएँ उपलब्ध है ही। इन परस्परताओं को संबंध के रूप में पहचाना जाता है। सबसे विशाल संबंध मित्र के रूप में, भाई के रूप में होना पाया जाता है। तर्कसंवाद का भूमि बनता है मित्र, भाई संबंधो मे हर विधाओ मे समाधान को पहचानना महत्वपूर्ण कार्य है। समाधानों के अर्थ में संवाद होना स्वाभाविक है। ऐसे संवाद मानव लक्ष्य के साथ होने वाली दिशा के अर्थ में होना पाया जाता है। सम्पूर्ण संवाद लक्ष्य को पहचानने के क्रम मे सार्थक होता है। लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा निर्धारित होने पर संवाद सार्थक होता है। फल परिणाम के रूप मे लक्ष्यपूर्ति, उसकी निरन्तरता का होना

संवाद सहित किया गया प्रवृत्ति, निष्कर्ष और प्रयासो के फलन में ही हो पाता है। ये सभी प्रयास और फलन बहुआयामी विधि से मानव कुल में ही सार्थक हो पाता है।

सार्थकता के लिए व्यवहार एक मुद्दा है। व्यवहार में संबंधो को पहचानना होता ही है। इन संबंधो को पहचानने के रूप में कम से कम विश्वास मूल्य प्रमाणित होना एक स्वाभाविक उपलब्धि है, प्रक्रिया है। विश्वास होने के आधार पर आरंभ होते हुए प्रयोजनो को, लक्ष्यो को और प्रक्रियाओं को पहचानने के अर्थ मे हर संवाद सार्थक होता है। मानव सम्बंधो में ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह सार्थक होते है। ये सब अभ्युदय के अर्थ में ही प्रयोजनशील होना पाया जाता है। अभ्युदय स्वयं में सर्वोतोमुखी समाधान है। मानव ही इसका धारक वाहक है। संबंधो मे ही इसका प्रमाण होना शाश्वत सत्य है। इसी आधार पर मानव परिवार से अखण्ड समाज तक समाधान सूत्र को फैला पाते है। यही व्यवहारात्मक जनवाद का प्राण तत्व है।

हर व्यक्ति व्यवहार प्रवृति में रहता है क्योंकि किसी न किसी मानव के साथ जीना है। मानव में होने वालो कुछ भी कार्यकलापो के अनन्तर अर्थात मानवेत्तर प्रकृति के साथ किया गया सभी कार्यकलाप के अनन्तर जीने का पहचान मानव के साथ ही सार्थक होता है। जीव जानवरो के साथ कितने भी हम प्यार से अथवा नाराजगी से, अपने मनमानी विधि से कर ले मानव के साथ ही हमे जीना होता है। अन्ततोगत्वा मानव के साथ मानव जागृतिपूर्वक नियम, मर्यादा, सम्मानो के साथ अपनी पहचान बना लेता है। इसी विधि से दूसरे की पहचान कर लेता है। इसी से जीने का विश्वास होना पाया जाता है। जागृत मानव अपने प्रतिभा और व्यक्तित्व की पहचान बनाने में तत्काल समर्थ होता है। इसमे कठिनाई तभी आती है भ्रमित आदमी के साथ अथवा भ्रमित आदमी जागृत आदमी के साथ जीना होता है इस विधि से निष्कर्ष को पाना आवश्यक है ही।

जागृत आदमी के साथ एक या अनेक भ्रमित आदमी जीने की स्थिति मे जिम्मेदारी जागृत आदमी की ही होती है कि भ्रमित आदमी को जागृत पद के लिये और जागृति के लिए प्रेरित करे। मूलत: एक पक्ष जागृत रहना मुख्य मुद्दा है। अब जागृति हमारे संवाद का मुद्दा बनता है। जागृति का तात्पर्य ही है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना। इसमे से पहचानने, निर्वाह करने का क्रियाकलाप है यह मिट्टी-पत्थर पाषाण सभी अपनी सजातीय-विजातीय पहचान बनाने मे समर्थ होता हुआ देखने को मिलता है। क्योंकि एक ही जाति के परमाणु अणु और अणु रचित पिण्डो के रूप में

सजातीय-विजातीय विधि से भी अनेकानेक पिण्डो के रूप में हमें धरती पर देखने को मिलते है। यह पहचानने निर्वाह करने के रूप मे ही आंकलित हो पाता है। यह परिणामों के आधार पर ही पहचानता निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है। अन्न-वनस्पतियाँ, हरियालियाँ अपने बीज-वृक्ष न्याय से पहचानने निर्वाह करने के कार्यक्रम को भले प्रकार से प्रस्तुत किये है। नीम के बीज से नीम वृक्ष, आम के बीज से ही आम वृक्ष होना विश्वसनीय है। ये सब संवाद चर्चा, परिचर्चा का मुद्दा है। हर संवाद में क्यों कैसे का उत्तर लक्ष्य और दिशा के सार्थकता में परिगणित होना पाया जाता है। हर प्रजाति की वनस्पति संसार बीजानुषंगी विधि से पहचान-निर्वाह करने का प्रमाण विविध रचना के रूप में प्रस्तुत हो चुकी है। इस धरती पर दूब घास से लेकर गगन चुंबी वृक्षो तक छोटे से छोटे रूप मे रचित काई से चलकर एक कोशीय बहुकोशीय रचनाएँ बीजानुषंगी विधि से सार्थक हो चुके है। ये सभी रचनाएँ एक दूसरे के साथ सर्वाधिक संख्या में पूरक होना पाया जाता है। मृदा, पाषाण, मणि, धातुएँ, रसायन संसार के लिए पूरक होना ही संवाद का एक अच्छा मुद्दा है। पूरकता का तात्पर्य है कि एक स्थिति से दूसरे उन्नत स्थिति के लिए पूर्व स्थिति का होना आवश्यक है। रसायन संसार में रसायन द्रव्य अनेक प्रकार से अपने वैभव को विस्तार करते हुए उत्सवित रहता हुआ देखने को मिलता है। इसका सत्य यही है बहुत छोटे रचना से वृहद आकार की रचना रचित हो चुकी है। बड़े-बड़े वृक्षो के रूप में, छोटे-छोटे पौधो के रूप में वनस्पति की रचनाएँ सर्व मानव के लिए दृष्टव्य है। ये जल थल दोनो स्थितियों में इस धरती पर स्पष्ट हुआ है। इन तथ्यो पर संवाद को विविध रूप में सम्पन्न किया जाना आगे पीढ़ी को बोधगम्य कराना संवाद का सार्थकता है। उसी के साथ लक्ष्य और सार्थकता को स्पष्ट कर लेना संवाद का प्रधान प्रयोजन है।

मानव व्यवहार और पूरकता :

जन चर्चा के मुद्दे मे पूरकता एक मुद्दा है। पूरकता के आधार पर ही जनचर्चा द्वारा, संवाद द्वारा, स्पष्टीकरण द्वारा समाधान के छोर तक पहुँचते है। समाधान मानव परम्परा के लिए स्वीकृत आवश्यकता, प्रधान आवश्यकता अथवा परम आवश्यकता है। समाधान अपने में क्यो, कैसे का सहज उत्तर है। हर मुद्दे के साथ क्यो, कैसे, कितना का प्रश्न होता ही है। जितने भी क्यों की बात आती है या प्रश्न उठता है उसका उत्तर का आधार मूल कारण ही होता है। कैसे का उत्तर हम पाने के लिए दौड़ते हैं। प्रक्रिया, प्रणाली पद्धति के सूत्रों के आधार पर प्रक्रियाएँ स्पष्ट हो जाती है। कितना का उत्तर, फल

परिणाम और आवश्यकता की तृप्ति के अर्थ में स्पष्ट हो जाता है। इसकी स्पष्ट चर्चा करने के योग्य इकाई केवल मानव ही है। मानव के साथ व्यवहार जुड़ा ही रहता है। व्यवहार सदा-सदा से मानव के साथ ध्रुवीकृत होता आया है। चाहे नकारात्मक हो चाहे सकारात्मक हो मानव अपनी परस्परता में व्यवहार करना सर्वस्वीकृत हो चुका है। मानव परम्परा में व्यवहार परस्परता में मूल्यों का निर्वाह करने के आधार पर ही प्रमाणित होता है। मूल्यों का निर्वाह संबंधो के आधार पर होना सर्वमानव को स्वीकृत है। मानव मानव के साथ सम्बन्धो को पहचानने की प्रवृति शिशु काल से ही निर्धारित है। यह शब्दो के रूप में सबको स्पष्ट है। मूल्यो के रूप में पहचान और उसकी निरन्तरता की आवश्यकता बनती है। सम्बन्ध, उसकी पहचान और निरन्तरता ही विश्वास है। इस परिभाषा के आधार पर सभी सम्बन्धो के साथ संवाद अपेक्षित रहता है। हर संवाद की सार्थकता में समाधान है। संवाद की सार्थकता क्यो, कैसे, कितना का उत्तर पाने में ही है।

सम्बन्ध की परिभाषा ही है ''पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना'' ऐसे सम्बन्ध का स्वरूप निरन्तरता में ही वैभव और प्रयोजन प्रमाणित होना पाया जाता है। प्रयोजन मूलत: सहअस्तित्व में नित्य प्रमाण ही है। यही जागृति, वर्तमान में विश्वास (परस्परता में भय, शंका मुक्ति) और समाधान होना स्वाभाविक है। इन तीनो विधाओं के आधार पर अथवा इन तीनो विधाओ में प्रमाण होने के उपरान्त समृद्ध होना एक आवश्यकता, सम्भावना और इस हेतु प्रयास होना स्वाभाविक स्वयं स्फूर्त है। इसका तात्पर्य यही हुआ कि हम मानव समझदारी पूर्वक ही समाधानित होते हैं और वर्तमान में विश्वास अर्थात सम्बन्ध की पहचान और उसकी निरन्तरता बनाए रखने में निष्ठा ईमानदारी होने का प्रमाण है। पहचान और उसकी निरन्तरता स्वयं जिम्मेदारी के रूप में स्पष्ट होती है। इस प्रकार समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी पूर्वक ही परिवार व्यवस्था में प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होना और समृद्धि का साक्ष्य स्पष्ट होना पाया जाता है। इसके लिए परिवार में चर्चा, परिवार के कार्य-व्यवहार के लिए चर्चा, संवाद और परिवार लक्ष्य के लिए संवाद मानव परम्परा में सम्पन्न होना एक प्रतिष्ठा है।

ऐसी प्रतिष्ठा चेतना विकास मूल्य शिक्षा संस्कार से अनुप्राणित होना रहना स्वाभाविक है। शिक्षा में सहअस्तित्व दर्शनज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरणज्ञान का स्पष्ट होना परम आवश्यक है। सहअस्तित्व नित्य प्रकटन व समाधान का स्रोत है। क्योकि हम सहअस्तित्व सहज सूत्र, व्याख्या के आधार पर ही समाधानित हो पाते हैं।

जीवन ज्ञान स्वयं सार्थक अर्थात समाधान पूर्ण प्रवृतियों का धारक-वाहक होता है और स्वीकृत होता है। इन दो ध्रुवो के आधार पर मानवीयता पूर्ण आचरण, कार्य-व्यवहार पूर्वकव्यवस्था और समग्र व्यवस्था को प्रमाणित करता है। इस विधि से उक्त तीनो मुद्दो का प्रयोजन स्वीकृत होता है। इन तीनो मुद्दो पर जितना भी संवाद हो पाता है, सब सार्थक होना पाया जाता है।

सार्थकता मानव परम्परा में परिवार सभा व्यवस्था से विश्व परिवार सभा व्यवस्था के रूप में समग्र व्यवस्था को प्रमाणित करना होता है। ये सब संवाद का अथवा सार्थक संवाद का आधार है। सार्थकता का स्वरूप दूसरी विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व ही है। तीसरी विधि से समझदारी, ईमानदारी, भागीदारी ही है। इन तीनो विधाओ का अंग-अवयव और विश्लेषण संवाद की वस्तु है। वस्तु अपने में वास्तविकता का प्रमाण है। व्यवस्था अपने में वस्तु है। समझदारी अपने में वस्तु है। समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ये नित्य वस्तु है। हर मानव निश्चयता, निरन्तरता, अक्षुण्णता को स्वीकारता है। यह संवाद का एक मुद्दा है। हर निश्चयता क्यो, कैसे, कितना की कसौटी पर निर्धारित होती है। अत्याधुनिक युग में बेहतरीन जिन्दगी का नारा है। जो संग्रह-सुविधा पर आधारित है। संग्रह-सुविधा का तृप्ति बिन्दु नहीं है। प्राचीन अर्वाचीन स्वीकृतियाँ भक्ति-विरक्ति को बेहतरीन जिन्दगी मानी गई थी। इन दोनो नजरियों का व्यक्तिवाद में व रहस्य में अन्त होना सिद्ध किया जा चुका है। व्यक्तिवाद ना तो परिवार व्यवस्था का आधार है, ना ही समुदाय व्यवस्था का आधार, समाज व्यवस्था तो कोसो दूर है। जबकि मानव समझदारी, मानवाकांक्षा, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी पूर्वक वैभवित होता हुआ स्थिति में अखण्ड समाज में प्रमाणित हो जाता है। मानव परम्परा में अखण्ड समाज एक मुद्दा है ही अखण्डता ही अक्षुण्णता सहज सूत्र है मानवीयता पूर्ण आचरण व्याख्या है।

व्यवस्था सार्वभौम होने के आधार पर ही अखंड समाज, अखंड समाज के आधार पर ही सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना पाया जाता है। अभी तक जितने भी समुदाय, समाज के नाम से प्रस्तुत हुआ, उन सब में अन्तर्विरोध बना ही है। परस्पर समुदायों में विरोध, विद्रोह, सामरिक कल्पनाएँ बनी हुई है। यह सार्वभौम व्यवस्था व अखंडता का विरोधी है। जबकि हर समुदाय अखंडता, सार्वभौमता, अक्षुण्णता को अवश्य स्वीकारा रहता है। ऐसी स्वीकृतियो के साथ जीता हुआ मानव अपने में से बनायी हुई मान्यताओं के प्रयोजन को पहचानना चाहता ही है। साथ में सर्वाधिक विरोधी तत्व, धर्म और राज्य

कहलाने वाली परम्परा ही है। हर मानव अपने में जागृति की ओर गतिशील होने के लिए सार्वभौम, अखंडता सूत्र बनी हुई है। जबकि धर्म और राज्य समुदाय गति विधि से अखंडता का नारा बताया करते हैं। ऐसा कोई समुदाय धर्म नहीं है, जो अपने को सर्वश्रेष्ठ नहीं बताता और अपने कार्यक्रमो को सार्वभौम नहीं बताता अथवा सबकी जरूरत नहीं बताता।

हर राज्य राष्ट्रीय पर्व दिवस की पावनबेला में राज्य की अखंडता, सार्वभौमता, अक्षुण्णता का नारा अथवा जिक्र करते ही है। जबकि सन 2000 के पहले दशक तक कोई ऐसा राज्य अथवा धर्म नहीं हुआ जिसका, अन्य धर्मो के साथ विरोध न हो, अथवा जो सबके लिए स्वीकार्य हो, ऐसा कोई धर्म ग्रंथ तैयार हो नहीं पाया। सभी अपने ढंग से श्रेष्ठता का दावा करते ही है। हर श्रेष्ठता की कसौटी है, जो सर्वमानव स्वीकृत हो जिसके फलन मे समाधान, समृद्धि, अभय सहअस्तित्व के रूप में प्रमाणित हो, स्वीकृत हो, और व्यवस्था के रूप में मानवीय शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन-कार्य, विनिमय कोष, (लाभ हानि मुक्त) और स्वास्थ्य-संयम कार्य रूप में प्रमाणो का वर्चस्व वर्तमान हो। इस प्रकार अखंड समाज, सार्वभौमता का प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है। इन प्रयोजनो के साथ ही इनकी निरन्तरता का वैभव होना पाया जाता है।

अखंड समाज में मूल्यो के आधार पर चरित्र और नैतिकता को प्रमाणित करना पाया जाता है। सार्थक संवाद के लिए यह ज्वलंत मुद्दा है। हर मानव सार्थक संवाद ही करना चाहता है। सार्थकता अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में और उसका फल परिणाम समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व के रूप में स्पष्ट हो जाता है, सार्थक संवाद का प्रयोजन यही है।

सार्थकता अपने में एक मुद्दा है। मानव परम्परागत विधि से ही किसी न किसी भाषा में संवाद करता है। अर्थात संवाद में भाषा का प्रयोग स्वाभाविक है। हर भाषा अपने में संवाद योग्य होना हर मानव को स्वीकार है। हर मानव किशोर अवस्था से ही किसी न किसी भाषा का अभ्यासी होता ही है। क्योंकि हर अभिभावक, अड़ोस-पड़ोस, बंधुजन सम्बोधन सहित भाषा प्रयोग करते ही है। शिशुकाल से ही बोलने का अभ्यास करता हुआ देखने को मिलता है। इसी क्रम में यह विश्वास सुदृढ़ होता है हर मुद्दे पर संवाद करने का तथा इस क्रम में एक दूसरे के साथ अपने अपने भाषा मर्यादा के साथ बातचीत करते हुए देखने को मिल ही रहा है। ऐसे वार्तालाप को किसी लक्ष्य या प्रयोजन के सिलसिले में

नियंत्रित करने पर संवाद कहलाता है । यदि लक्ष्य और प्रयोजनो से जुड़ा न हो, ऐसे वार्तालाप को गपशप कहते हैं। हर सूचना भी प्रयोजन के अर्थ में स्वीकार होती है अन्यथा स्वीकार नहीं होती है । इस प्रकार सार्थकता, संवाद का आधार होना, गम्यस्थली होना स्पष्ट हो जाता है ।

भाषा अपने में बोली के रूप में आता ही है। हर बोली का अर्थ होना पाया जाता है। ऐसे अर्थ अस्तित्व में कोई वस्तु, घटना, फल, परिणाम के रूप में होना पाया जाता है । इसी के साथ क्रियाकलाप, व्यवहार प्रक्रिया भी भाषा के अर्थ के रूप में अस्तित्व में होता ही है। अस्तित्व में होना ही अर्थ व वस्तु है क्योंकि प्रयोजन, परिणाम, फल, क्रिया, प्रक्रिया भी वस्तुगत विद्या ही है। ये सारे अर्थ, प्रयोजन के साथ ही सार्थक होना देखा गया है। सार्थकता तो सुस्पष्ट है। समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही वांछित उपलब्धि व वस्तु है। इसी के साथ सम्पूर्ण प्रकार के शिक्षा-संस्कार प्रक्रिया, न्याय सुरक्षा प्रक्रिया, उत्पादन-कार्य प्रक्रिया, विनिमय-कोष प्रक्रिया, स्वास्थ्य-संयम क्रियाकलाप के रूप शब्द का अर्थ समझ में आता है। जिससे मानवाकांक्षा अथवा मानव प्रयोजन प्रमाणित होने की अपेक्षा मानव परम्परा में समाहित है ही।

जीवन अपेक्षा को सुख, शान्ति, सन्तोष, आनन्द के रूप में पहचाना गया है। सुख को समाधान की स्वीकृति और अनुभव के रूप में पहचाना गया है। समाधान, समृद्धि की संयुक्त स्वीकृति और अनुभव शान्ति का स्रोत और स्वरूप होना पाया जाता है। समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास) के योगफल की अनुभूति एवं स्वीकृति को सन्तोष के रूप में पाया जाता है । समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व की संयुक्त अनुभूति आनन्द के रूप में सुस्पष्ट है। जीवन आकांक्षा और मानव आकांक्षा यह परस्परता में पूरक होना पाया जाता है । सहअस्तित्ववादी नजरिया से यह स्पष्ट होता है सुखी होने के लिए समाधान अपरिहार्य है।

सुख को मानव के धर्म के रूप में पहचाना गया है। मानव ज्ञानावस्था की इकाई होने के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है। ज्ञान ही विज्ञान और विवेक के रूप में प्रमाणित होना पाया गया है । विवेक की सार्थकता लक्ष्य को पहचानने के रूप में, विज्ञान की सार्थकता को जीवन लक्ष्य मानव लक्ष्य के लिए दिशा और प्रक्रिया को स्पष्ट करने के रूप में और स्पष्ट हाने के रूप में, साथ ही प्रमाणित होने के रूप में पहचाना गया है। इसे हर व्यक्ति पहचान सकता है प्रमाणित हो सकता है। इसके लिए चेतना विकास मूल्य शिक्षा प्रस्तुत है।

सदा से मानव सुखी होने के लिए इच्छुक प्रयत्नशील रहा ही है। यत्न प्रयत्नो में सोचने समझने की आकांक्षा समाहित रही ही है। साथ में इनके फल परिणामों को आंकलित करते आया है। यह सभी प्रक्रियाएँ मानव के सुखधर्मी होने के प्रमाण में गण्य हैं। मानव का सुख धर्मी होना सर्वमानव में दृष्टव्य है।

मानव सुखधर्मी होना मानव परम्परा में, से, के लिए सौभाग्य है। क्योंकि सुखी होने के लिए व्यवहार व प्रयोग करना स्वाभाविक है। इसी क्रम में सही गलती होती रही। सही को मानव स्वीकारता आया। सहीपन को संवेदनशीलता में अनुकूलता प्रतिकूलता के रूप में पहचानते आया, यह प्रक्रिया और शोध हर मानव में होता आया। अनुकूलता में सुख भासना दूसरा सौभाग्य रहा। क्योंकि सुख भाषने के आधार पर ही सुख की निरन्तरता की अपेक्षा, कल्पना और प्रयोग होना स्वभाविक रहा। जिसके आधार पर प्रमाणो का लोक-व्यापीकरण उदय होता आया। इस प्रकार मानव के अपने सौभाग्य को पहचानने, प्रयोजनशील होने, प्रमाणित होने और प्रमाण परम्परा बनाने की सीढ़ियाँ अपने आप से लगी है। यह सब मानव प्रवृति की सहज सीढ़ी है। इस क्रम में मानव, (हर नर-नारी) अपने प्रयासो को बनाए रखना देखा जा रहा है। इसी क्रम में संवेदनशीलता के अनुकूलता के मुद्दे में पराकाष्ठा यानि व्यसन में मनमानी पर पहुँचने के उपरान्त भी सुख की निरन्तरता का रास्ता अभी तक तय हो नहीं पाया। व्यवहारात्मक जनवाद दिशा निर्धारित करने के पक्ष में प्रस्तुत है।

सुख अर्थात समाधान का अनुभव होना पहले जिक्र किया गया है। मानव ही अनुभव योग्य इकाई है। जीवो में संवेदनाओ की स्वीकृति होना और संवेदनाओं के विरोध को नकारते हुआ देखा जाता है। मानव भी ऐसा ही करता है। संवेदनाओं से जो सुख भासने का मुद्दा है वह मानव में ही होता है। क्योंकि जीवो में प्रतिकूलता होते हुए भी समाधान के लिए शोध-अनुसंधान करता हुआ देखने को नहीं मिलते। इस प्रमाण से पता लगता है जीव संसार सभी प्रतिकूलता और अनुकूलता को स्वास्थ्य के अर्थ में ही पहचानता है। इसी आधार पर जीव संसार को जीने की आशा के आधार पर जीवनी क्रम में जीता हुआ पहचाना गया है। हर जीवो में जीने की आशा का होना हर मानव को बोध होता ही है। यद्यपि जीवो में जीवन, जीने की आशा को ही प्रमाणित कर पाया है। इसके मूल में यह भी पहचान में आया है कि शरीर को जीवन मानते हुए जीते है। इसलिए स्वस्थता के आधार पर अनुकूलता प्रतिकूलता को पहचाना करता है। यही जीव संसार का शरीर को जीवन मानने का प्रमाण है।

मानव भी या तो जीवो के सदृश्य शरीर को जीवन मानते हुए अथवा नहीं मानते हुए जीता है। इससे पर्याप्त ज्ञान न होना स्पष्ट हो गया। हर मानव सुखी होना चाहता है सुखी होने का नित्य श्रोत समाधान है। समाधान ही सुख के रूप में अनुभूत होता है। इसका मतलब यह हुआ समाधान ही सुख है। ऐसे समाधान के मूल में समझदारी का होना अनिवार्य है। समझदारी का फलन समाधान है, समाधान का फलन सुख है। इस क्रम में हर नर-नारी के सुखी होने का स्रोत नित्य वर्तमान है समीचीन भी है। समीचीनता का तात्पर्य है, हमारे प्रवृति के आधार पर समाधान नित्य सुलभ है क्योंकि समझदारी को प्रमाणित करने का अरमान हर नर-नारी में समाहित है। समझदारी के फल के अनुसार समझदारी का प्रमाण हो पाता है।

समझदारी का स्वरूप अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन और जीवन ज्ञान का संयुक्त रूप है। अस्तित्व होने के रूप में वैभव है। पुन: नित्य वर्तमान है। दूसरी भाषा मे होने की निरन्तरता ही वर्तमान है। हर परिणाम, परिवर्तन, विकास और जागृति के उपरान्त भी यथास्थितियॉं बनी ही रहती है ही यथा स्थितियॉं होने का साक्षी है। इस प्रकार से यह भी हमें समझ में आता है कि हर वस्तु अपने मूल में अविनाशी है। कितने भी परिवर्तन परिणाम हो जाये। इस विधि से सम्पूर्ण अस्तित्व का स्थिरता अपने आप स्पष्ट हो जाता है। अविनाशिता के आधार पर अस्तित्व स्थिर होना स्पष्ट है। यही अस्तित्व सहज वैभव भी है। व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण यथा स्थितियो का वैभव ही अस्तित्व सहज वैभव है। यथा स्थितियों के आधार पर निश्चयता समझ में आती है। दूसरी विधि से हर यथास्थिति का निश्चित आचरण है। क्योंकि यह स्पष्ट हो गया है कि विकासक्रम अपने आप में एक कतार है विकास अपने में एक स्थिति है। विकास क्रम में भी यथा स्थितियाँ होना पाया जाता है। विकास अपने में जीवन पद के रूप में होना पाया जाता है। जीवनपद में निश्चित आचरण अक्षय बल, अक्षयशक्ति विद्यमान है। ऐसे अक्षय शक्ति, अक्षय बल का वैभव जागृति के क्रम में भास अभास होता है और जागृति उपरान्त वैभव का निश्चयन और प्रयोजन प्रक्रिया भी स्पष्ट हो जाता है। इस आधार पर मानव को जागृतिक्रम और जागृति रूप में, आज की स्थिति में पहचानना बन गया है। जागृति मानव को स्वीकृत होना देखा जाता है।

जागृति स्वयं में समझदारी का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन है। समझदारी ही समाधान है। समाधान स्वयं सुख होना स्पष्ट किया जा चुका है। इस प्रकार संवाद विधि से स्पष्ट होता है कि मानव सन 2000 तक जागृति क्रम में ही जिया। जागृति की अपेक्षा बनी

रही और जागृति के प्रस्ताव के रूप में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद मानव के समक्ष उपस्थित हुआ। इससे यह स्पष्ट हो गया जीव संसार के सदृश्य मानव शरीर स्वस्थता के आधार पर जीने जाते है तो शरीर स्वस्थता का प्रयोग भोग और संघर्ष व युद्ध में ही होता है। अधिकाधिक उत्पादन-कार्य भी भोग और युद्ध के लिए ही हो रहे है। यह सभी समुदाय गत मानव का स्वरूप है जबकि मानव सुखी होना चाहता है। युद्ध और भोग विधि से सुख और सुख की निरन्तरता नहीं हो पाई। इसीलिए मानव व्यवस्था में जीने में सफल नहीं हो पाया।

संवाद के लिए यह भी एक प्रधान मुद्दा है सुखी होने के लिए समाधानित होना जरूरी है। समाधान के लिए समझदारी और व्यवस्था में जीने की तमन्ना और अभ्यास आवश्यक है। इस क्रम में हम परम्परा के रूप में व्यवस्था में जीते हुए समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक सुखी होना, पूरी परम्परा सुखी होना मानव व्यवस्था के आधार पर जीना संभव हो जाता है। इसीलिए हम यह निर्णय कर सकते है मानव समझदारी पूर्वक ही सफल होता है। समझदारी मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार पूर्वक सर्व सुलभ होना पाया जाता है। इसविधि से हम इस बात पर निर्णय कर सकते है संवाद भी कर सकते है कि जीव संसार शरीर स्वस्थता को प्रमाणित करते है। अपनी आहार पद्धति से विहार पद्धति से, मानव अपने आहार, विहार, व्यवहार पूर्वक सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने की आवश्यकता आ चुकी है। इसलिए हर नर-नारी को सुखी होने के अर्थ में जीना स्वीकार है। इसे सार्थक, सुलभ अथवा सर्वसुलभ होने के अर्थ में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद के अंग भूत व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है।

समाधान अपने शरीरगत वस्तु है या जीवनगत है ? इस बात की चर्चा भी मानव कुल में प्रासंगिक है। निष्कर्षो को मानव परम्परा में स्थापित करना मानव का उद्देश्य है। भौतिकवाद, आदर्शवाद अपने-अपने तरीके से निष्कर्ष निकालने की कोशिश किए। आदर्शवाद रहस्य से मुक्त नहीं हो पाया और भौतिकवाद संघर्ष से मुक्त नहीं हुआ रहस्यवाद मतभेद से मुक्त नहीं हुआ। संघर्ष, युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह से मुक्त नहीं हुआ। बहुत प्रकार से प्रयत्न तो किया है। मतभेद और संघर्ष से मुक्ति मानव कुल को मिली नहीं। यही आर्तनाद पुनर्विचार का आधार बना। पुनर्विचार करने से पता चला कि भौतिक और रासायनिक संसार को अध्यात्मवाद नें मिथ्या बता दिया। इसका प्रमाण मिला मानव परम्परा में, रहस्य के प्रति बढ़ता हुआ अनास्था। आस्था का तात्पर्य ना समझते हुए मानने की चेष्टा। ऐसी मान्यता के प्रति प्रतिबद्धता है। इस ढंग से रहस्य के प्रति उदासीनता, संघर्ष के प्रति अस्वीकार हर मानव में दिखाई पड़ता है।

लक्ष्य और दिशा को निर्धारित करने के लिए दो ध्रुव पहचानने में आया विवेक और विज्ञान। ये दोनो ज्ञान मूलक विधि से सार्थक होना पाया गया है। विवेक और विज्ञान अपने में लक्ष्य और दिशा को चिन्हित करने की विधि और प्रक्रिया है। मानव अपने में विवेचना पूर्वक ही लक्ष्य निर्धारित होता है। और विश्लेषण पूर्वक ही दिशा निर्धारित होती है। विश्लेषण में क्रिया गति का निश्चयन होना पाया गया। काल को क्रिया की, वस्तु की अवधि के रूप में पहचाना गया यह भी साथ में पहचाना गया कि हर अवधि संख्या के रूप में होती है। हर संख्या काल, क्रिया, नाप, तौल के रूप में ही पहचानने में आती है। हर प्रयोजनो को काल के आधार पर या क्रिया के आधार पर पहचानना संभव है। हर संख्यात्मक काल जो भूत और भविष्य के रूप में होना पाया जाता है यह क्रिया के साथ वर्तमान होना पाया गया। इस ढंग से क्रिया नित्य वर्तमान होना अध्ययनगम्य हो जाती है। अध्ययन में भाषा के द्वारा क्रिया, काल, वर्तमान अर्थ के रूप में स्पष्ट होते ही है। सार्थक अध्ययन यही है जिसके आधार पर हम मानव अपने पद और अवस्था प्रतिष्ठा को समझना सुलभ हो जाता है। ऐसी सुलभता की हर मानव अपेक्षा करता ही है। इसलिए सदा सदा मानव को अध्ययनपूर्वक समझदार होने की आवश्यकता बनी ही है। समस्त मानव किसी आयु के अनन्तर अपने को समझदार मानता ही है। अथवा समझदार होना चाहता ही है। इन स्थिति में पाये जाने वाले मानव अपने को राज्यगद्दी, धर्म गद्दी और व्यापार गद्दी में स्थापित कर लेता है। आज तक का इतिहास भी इसी तथ्य की पुष्टि है। गद्दी परस्त लोगों द्वारा जो गद्दी परस्त नहीं हैं उन्हे अपने व्यवसाय का वस्तु मान लिया जाता है। जैसा धर्मगद्दियों आस्थावादियों के साथ खेती, राजगद्दी जो राजनेता नहीं है उनके साथ खेती के अतिरिक्त (जो सामान्य जनजाति) इनके साथ खेती बनी हुई है इसका गवाही ही है धर्म गद्दी में पैर पड़ाई, दक्षिणा चढ़ाई कारोबार दिखाई पड़ता है। राजगद्दी में शुल्क टैक्स और राज्य के ऊपर कर्जा लेने का अधिकार का प्रयोग और संग्रहित कोष का मनमानी खर्च करने की स्वतंत्रता को देखा जा रहा है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में लाने से समीक्षित होता है कि सामान्य जनजाति की मानसिकता के आधार पर ही दोनो गद्दियों को मान्यता है। सामान्य जनजातियों मे से कोई एक आदमी ही गद्दी परस्त होता है। उनसे सुख शान्ति की अपेक्षा सामान्य लोगो को बनी रहती है। यह विशेष कर राजगद्दी के साथ जुड़ी हुई तथ्य है। धर्मगद्दी के साथ और कुछ आशय सामान्य लोगो की मानसिकता में बना रहता है। यह पापमुक्ति, अज्ञान-मुक्ति और स्वार्थ मुक्ति की अभिप्षा देखने को मिलती है। इन्हीं आधारो पर धर्मगद्दियों के साथ कट्टरता अथवा निष्ठा बनी रहती है। इस क्रम में यह समीक्षित होता है, धर्मगद्दियों में जो प्रथम व्यक्ति

अधिष्ठित होता है उनमें धर्म आपने स्वरूप मे व्याप्त नहीं रहता है, इसका गवाही यही है सभी धर्मगद्दियाँ धर्म के लक्षणो को बताते है न कि धर्म को। इसी प्रकार जनमानस में राजगद्दी से अमन चैन की अपेक्षा बनी ही रहती है। इस तथ्य को परीक्षण करके देखा है कि मानव में सुख शान्ति का स्रोत मानव में ही प्रमाणित होने वाली जागृति है। जागृति के आधार पर समाधान, समाधान के आधार पर सुख का अनुभव, समाधान समृद्धि के साथ सुख शान्ति का अनुभव, समाधान समृद्धि अभय (वर्तमान में विश्वास) के साथ सुख, शान्ति, सन्तोष का अनुभव होना पाया जाता है। समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणों का अनुभव सुख, शांति, संतोष, आनन्द होना पाया जाता है। धर्म को सुख रूप होना पाया गया है और राज्य को समाधान समृद्धि अभय, स्वरूप बोलना ही बना रहता है। जो कि सहअस्तित्व का वैभव होना पाया जाता है। सहअस्तित्व में मानव वैभव समाहित रहता है यह जनसंवाद के लिए सहज रूप में प्रासंगिक है। यह प्रसंग पूरा सहअस्तित्व की अभिव्यक्ति है, सम्प्रेषणा है, और प्रकाशन है। सहअस्तित्व के अतिरिक्त प्रकाशन का आधार ही नहीं है। इसलिए हम मानव सार्थक संवाद पूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व रूपी तथ्यो को परस्परता में बोधगम्य, अध्ययन गम्य और कार्य-व्यवहार-आचरणगम्य होने के अर्थ में सार्थक होना देखते है। इसे हर समझदार नर-नारी सार्थक बनाने योग्य है ही। समझदारी का दावा किसी न किसी विधि से हर मानव करता ही है। समझदारी का प्रमाण मानवाकांक्षा रूपी अथवा मानव लक्ष्य रूपी समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व ही है। इसके आधार पर मानव का वैभव धर्म अर्थ और राज्य का संयुक्त रूप में वैभवित होना सहज है।

वैभव के मूल में समझदारी और जागृति ही अति प्रमुख स्रोत है। यह सार्थक संवाद केलिए अनुपम मुद्दा है। जागृति और समझदारी अविभाज्य है। समझदारी अपने में ज्ञान, विज्ञान, विवेक के रूप में कारगार होने की स्थिति चर्चा में आ चुकी है। ज्ञान, विज्ञान, विवेक का संयुक्त नाम है समझदारी। विवेक और विज्ञान के मूल में ज्ञान ही प्रधान वस्तु है। ज्ञान अपने स्वरूप में सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति है। ज्ञान होने के लिए ज्ञाता की पहचान होना जरूरी है। ज्ञाता अपने स्वरूप में जीवन होना पाया जाता है। जीवन अपने स्वरूप में गठनपूर्ण परमाणु अक्षय बल अक्षयशक्ति सम्पन्न है। जो आशा विचार, इच्छा, संकल्प, और प्रमाणो को प्रमाणित करने योग्य क्षमता सम्पन्न है। यही अक्षय शक्ति है। इसी क्रम में अनुभव बल, बोधबल, साक्षात्कार बल, तुलनबल, आस्वादन बल के रूप में परीक्षित हो चुके है। ये पांचो बल प्रत्येक मानव जीवन में

गवाहित होते है। आस्वादन ज्ञान मूलक विधि से सम्बंधो में निहित मूल्यों और मूल्यांकन के रूप में फलत: परस्पर तृप्ति के रूप प्रमाणित होना पाया जाता है। यह सब अपने अपने में गवाहित हैं। आस्वादन की क्षमता निरन्तर बनी ही रहती है। इसी प्रकार साक्षात्कार, बोध, अनुभव में भी निरन्तरता का होना देखा गया है। मूलत: अनुभव सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में सम्पन्न होता है। इसलिए सहअस्तित्व को परम सत्य के रूप में पहचान गया है। इसकी निरन्तरता अर्थात अनुभव की निरन्तरता सदा बनी रहती है सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व निरन्तर है ही। इसे हर व्यक्ति सार्थक संवाद से बोध तक सार्थक होना संभव है। यह प्रक्रिया मानव में, से, के लिए परम आवश्यक है।

सत्य में अनुभूत होना अनुभव सहज प्रमाणों को प्रमाणित करना ही जागृति है यही परम सत्य है। सत्य की परिकल्पना, कल्पना मानव सुदूर विगत से करता ही आया है। सत्य की कल्पना शाश्वत, सुन्दर, कल्याण रूप में की गयी। कल्याण का तात्पर्य दुख-क्लेश व भ्रम मुक्ति है। सत्य की परिकल्पना दिया कि सत्य, शिव, सुन्दर, शाश्वत है कल्याणकारी है और ज्ञान है। ज्ञान से ही दु:ख मुक्ति होने की चर्चा है। सत्य क्या है पूछने पर, मन वाणी से अगोचर बता दिया इसीलिये सत्य और ज्ञान को रहस्यमयी वस्तु मानते ही आये। रहस्यमयी मान्यता के आधार पर सत्य, धर्म, वादग्रस्त होता रहा। धर्म के संदर्भ में धर्म के लक्षणों को बताकर उद्देश्य का आधार बताया। रहस्य से मुक्ति मानव की अपेक्षा बनी ही रही। सत्य धर्म न्याय की अपेक्षा मानव परम्परा में बनी ही रही, भले ही चिंन्हित रूप में स्पष्ट नहीं हो पायी। न्याय न्यायालयों में भी चिन्हित नहीं हो पाया। अन्ततोगत्वा फैसले को न्याय अभी तक हम मानव मानते चले आये है।

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के नजरिये में हम मानव इस तथ्य को चिन्हित रूप में समझ सकते है। मानव परम्परा में और नैसर्गिक प्राकृतिक परम्परा में अच्छी तरह से प्रयोग कर सकते है। प्रमाणित कर सकते है। प्रमाणित होना ही मानव परम्परा का सम्मान है। मानव ही न्याय धर्म सत्य प्रमाणित करने योग्य इकाई है। सार्थक संवाद के लिये सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व को समाधान रूप में पहचानने के उपरान्त न्याय, धर्म, सत्य ही सार्थक संवाद का आधार बन जाता है।

सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व-दर्शन, ज्ञान, दृष्टा-पद प्रतिष्ठा का द्योतक है। जीवन ज्ञान स्व और सर्वस्व को प्रमाणित करने की प्रतिष्ठा है। स्व अपने आप में जीवन इकाई के रूप में प्रतिष्ठा है। यही चैतन्य इकाई है। यही गठनपूर्ण परमाणु है यही अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न इकाई है। रासायनिक भौतिक वस्तुओं से रचित प्राणकोषा व प्राणकोषा से

रचित सप्त धातु रचित शरीर जिसमें समृद्ध मेधस तंत्र का होना पाया जाता है। को संचालित करते हुए जागृति को प्रमाणित करना ही जीवन का उद्देश्य है। इस क्रम मे मानव परम्परा सत्य कल्पना, आकांक्षा और सत्य के प्रति आश्वस्त होने का प्रयास मानव कुल में प्रचलित रहे आया। क्रम से आकांक्षाएं विचारों में, विचार तर्क में, तर्क के अनंतर आस्था में प्रवृत होता ही आया है।

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद हर नर-नारी में जीवन शक्ति और बल को समान रूप में पहचानने की विधि और अध्ययन प्रस्तुत किया है। जीवन शक्ति और बल को अक्षय रूप में पहचानना अध्ययन विधि से सहज हो चुका है। साथ ही जीवन का अमरत्व प्रमाणित होना समझ में आता है। भौतिक रासायनिक क्रियाकलाप में भागीदारी करता परमाणु यथा स्थितियों में, के साथ और त्व सहित व्यवस्था के रूप में होना स्पष्ट हो चुका है। जड़ परमाणु अपने में एक से अधिक अंश परस्परता में पहचानने के आधार पर स्वयं स्फूर्त व्यवस्था है क्योंकि हर परमाणु का आचरण निश्चित रहता है। इसी प्रकार परमाणु रचित अणुओं का आचरण भी निश्चित रहता है। विभिन्न प्रजाति के अणुओं के योग से रासायनिक वैभव स्पष्ट हो चुकी है। रासायनिक वैभव का नियति प्राण सूत्र - प्राण कोषा और प्राण कोषा से रचित रचनाएँ जैसे प्राणावस्था (वनस्पति संसार) जीवावस्था तथा मानव शरीर ही है। मानव ही सभी प्रकार की शरीर रचनाओ का अध्ययन करने में निष्णात होना चाहता है। यह मानव की सहज प्रवृति है। मानव शोध, अनुसंधान, प्रयोग पूर्वक परम्परा में प्रमाणों को समाहित करने का इच्छुक होना पाया गया है। इस क्रम में अभी तक किये गये वैज्ञानिक तथ्यों मे सार उपलब्धि जो मानव के हाथ लगी है वह दूर-दर्शन, दूर-श्रवण,दूर-गमन है। इन सबका सकारात्मक भाग समाज गति के लिए उपयोग करना मानव परम्परा की गरिमा है। मानव इन अद्भूत उपलब्धियों को नकारात्मक पक्ष में जो उपयोग प्रयोग किया है वह सामरिक तंत्र ही है। सामरिकता के जितने भी यंत्र-उपकरण बने सब मानव की बर्बादी का द्योतक है। यही आजादी का रास्ता अभी तक हुआ नहीं है। परिपूर्ण होने के लिए सहअस्तित्व ज्ञान विज्ञान, विवेक परम आवश्यक है। इन सबका विधिवत अध्ययन करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद प्रस्तुत हुआ है। इस नजरिया से परस्परता में संवाद सुलभ होने के लिए यह व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है।

संवाद मानव परम्परा में एक सहज कार्य है। इसमें कहीं न कहीं सर्वशुभ की कामना समायी रहती है। सर्व शुभ घटनाएँ घटित होने के उपरांत मानव परम्परा स्वयं शुभ

परम्परा के रूप में प्रमाणित होने की सम्भावना बनी ही है। मानव में चाहत भी बनी है। चाहत और सम्भावना का संयोग योग बिन्दु में ही शुभ परम्परा का उद्‌गम है। इसका प्रमाण रूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार में मानव की पहचान, मानव की पहचान का मतलब मानवीय शिक्षा, मानवीय व्यवस्था, मानवीय संविधान और मानवीयता पूर्ण आचरण को बोधगम्य कराना ही है। इस क्रम में मूल सूत्र ''त्व सहित व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी'' ही है। मानवत्व अपने में जागृति के रूप में सुस्पष्ट है। जागृति अपने में समझदारी का स्वरूप होना स्पष्ट हो चुकी है। समझदारी अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व होना स्पष्ट हुआ। इसी क्रम में अर्थात जागृति क्रम मे मानव परम्परा का वैभव, मानवत्व सहित महिमा, परिवार में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण, विश्व परिवार व्यवस्था तक सोपानीय क्रम मे प्रमाणित होना है। इसी विधि से मानव संबंध और प्राकृतिक संबंध संतुलन होना पाया जाता है। नियति विरोधी, प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी गति विधियो से मुक्ति पाने का उपाय भी यही है। हर मानव विरोधो से मुक्ति पाना चाहता ही है। इसी तथ्यवश इसकी संभावना सुस्पष्ट होती है। प्रमाणित होना मानव परम्परा को ही है।

मानव ही भ्रमवश गलतियो को करता हुआ, अपराधो को करता हुआ, द्रोह, विद्रोह, शोषण करता हुआ देखने को मिलता है। इसका साक्ष्य हर देश के संविधान में गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकने की व्यवस्था दे रखी है। यही शक्ति केन्द्रित शासन, संविधान व्यवस्था मानी गई है। इसके साथ समुदायों का सहमति भी है और विरोध भी है। इसका सर्वेक्षण से पता चलता है स्वयं पर गुजरने में विरोध, असहमति और संसार में घटित होने में सहमति है। इस क्रम में अभी तक अपराध और गलतियों का सुधार, युद्ध-मुक्ति का उपाय, मानव परंपरा में सूझबूझ के रूप में, कार्य-व्यवहार प्रमाण के रूप में उद्‌घाटित नहीं हो पाया। कुछ लोग इसकी आवश्यकता को अनुभव करते रहे। मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद गलती और अपराध के सुधार का उपाय सुझाया। इसी के साथ मानवत्व सहित परिवार व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को मानव स्वीकारने की स्थिति में युद्ध-मुक्ति अवश्यंभावी होना स्पष्ट कर दिया। इसमें इतनी ही आवश्यकता जनमानस और लोककल्याणकारी, राजनैतिक, धर्मनैतिक, समाजसेवी संस्थाओ के पारंगत होने के आधार और शिक्षा विधा में मानवीयता का अध्ययन सुलभ कराने की आधार पर निर्भर है। यह अध्ययन सुलभ होने के उपरान्त ही सर्वसुलभ होना स्वाभाविक है।

हर मानव अपने में, से, के लिए सुलझना ही चाहता है, उलझना नहीं चाहता । उलझते हुए व्यक्तियों का उद्गार यही है उलझन एक मजबूरी है । उलझन से मुक्ति पाने की इच्छाएँ निहित रहती ही है । इसीलिए सुलझन की संभावनाएँ समीचीन होना सुपष्ट होती है । सभी सुलझन समझदारीपूर्वक मानव व्यवस्था में जीना ही है ।

सुलझन ही सदा सदा से मानव की अपेक्षा है । सारे अड़चनों का कारण नासमझी है, समस्या है । सम्पूर्ण समस्याएँ मानव की सुविधा, संग्रह, भोग, अतिभोग प्रवृति की उपज है । इन सारी स्थितियों को देखने पर पता चलता है समझदारी ही मानव का समाधान और समृद्धि का निर्वाध गति है, अथवा अक्षुण्ण गति है अथवा निरन्तर गति है । गति सदा सदा से मानव परम्परा के रूप में ही होना सम्भावित है । समझदारी पूर्ण परम्परा ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का एक मात्र उपाय है । दूसरी किसी विधि से व्यवस्था की सार्वभौमता और समाज की अखंडता को अभी तक स्पष्ट नहीं कर पाये । मानव में समझदारी का स्रोत सर्वसुलभ होना ही है । ऐसे कार्य में आप हम सभी को भागीदार होने की आशा अपेक्षा और कर्तव्य है । इसी आशय को सार्थक संवाद में, अवगाहन में लाने का यह प्रयास है ।

अखंडता और सार्वभौमता के वर्चस्व का धारक वाहक केवल मानव ही है । ऐसी अखंडता और सार्वभौमता की पहचान के पूर्व जानने मानने के अर्थ को स्पष्ट कर लें । मानव में ही जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की क्रियाकलाप परम्परा में स्पष्ट हो जाती है या प्रमाणित हो जाती है । जाने बिना मानना रूढ़िवादिता के रूप में स्पष्ट है । जानते हुए नहीं मानना एक अन्तर्विरोध अथवा का स्वरूप होना पाया गया है । इसलिए यह समझ में आता है जानना, मानना मानव-परम्परा में, से, के लिए एक अनिवार्य क्रिया है । जानना मानना ही प्रमाण का आधार बनता है । प्रमाण क्रियान्वयन होने की स्थिति में पहचानना, निर्वाह करना भी होता है । प्रमाण किसके साथ प्रस्तुत होना है इस का पहचान होना आवश्यक है । इस विधि से सर्वमानव मानव के साथ ही जानने मानने का प्रमाण प्रस्तुत करता है । यह प्रमाण समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही होता है जिसके फलस्वरुप में सुख, शान्ति, सन्तोष, आनन्द होना पाया जाता है । अनुभव धारक ही वाहकता का स्रोत है । अनुभवमूलक विधि से ही अखंडता और सार्वभौमता का प्रमाण होना पाया जाता है । इसकी स्वीकृति अनुभव के पहले से ही मानव में सर्वेक्षित हुई है । इसे प्रत्येक व्यक्ति कर भी सकते है । हर निश्चयन निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण की सहज प्रक्रिया से ध्रुवीकृत होता है और निश्चित होता है । यह निश्चित बात है कि निश्चयता में

ही मानव जीना चाहता है। अनिश्चयता मानव को स्वीकृत नहीं है। भ्रम की स्थिति में भी निश्चयता की अपेक्षा मानव में, से, के लिए निहित रहती ही है। निश्चयपूर्वक ही मानव धरती पर चल पाता है। हवा पर चलता है और पानी पर चलता है। इसी प्रकार अन्य गतियों मे भी निश्चयता की अपेक्षा बनी हुई है। निश्चयो के साथ ही जानने मानने का प्रयोजन प्रमाणित होता है। धरती पर चलने के पहले से ही धरती की स्थिरता धरती पर निहित मानव को ज्ञात रहती है। प्रयोग से सुदृढ़ होती जाती है। इसी प्रकार हवा पर, जल पर चलने के तरीकों को मानव अपना चुका है। हवा पर चलने के लिए हवा की सांद्रता को बढ़ाने और सांद्रता की अपेक्षा में यान गति को अधिक बनाए रखने के उपायों को मानव अपना चुका है। इन उपायो के साथ साथ मानव वायुयान तंत्र को सर्वसुलभ कर चुका है। प्रमाणित कर चुका है। इसी प्रकार जल सान्द्रता की अपेक्षा में जलयान गतियों की स्थिति को बनाए रखने के उपायों को मानव अपना चुका है। जल सान्द्रता पर तैरने का तरीका, वस्तु और आकार प्रकार विधियो मे पारंगत हो चुका है। ये सब सुनिश्चयता के आधार पर ही सुलभ हुआ है। इस प्रकार निश्चय के आधार पर स्थिति गतियॉं प्रयोजनशील होना सार्थक होना घटित हो चुकी है। यह भी स्थिरता निश्चयता को अपनाने की व्यवस्था प्रचलित है।

संवाद में स्थिरता निश्चयता को निरूपित करना मानव परम्परा के लिए एक आवश्यकता है। स्थिरता क्रिया की निरन्तरता के रूप में पहचानी जाती है, निरन्तरता ही स्थिरता है। हर क्रिया अपने में निरन्तर है ही, उसके साथ यह भी समझने की आवश्यकता है कि हर एक एक अपने यथा स्थिति के अनुसार स्थिर है। इसका प्रमाण निश्चित आचरण है। व्यापक वस्तु भी स्थिर रूप में ही व्याख्यायित होती है। व्यापक वस्तु अपने में पारगामी, पारदर्शी के रूप में वैभवित है वैभव नित्य है और स्थिर है। इसका दृष्टा केवल मानव अथवा सर्वमानव है। इसी तथ्यवश हर इकाई व्यापक में डूबी, भीगी, घिरी रूप में नित्य और स्थिर है। इस प्रकार सहअस्तित्व में स्थिर और निश्चयता के रूप में होना तर्क और संवाद प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है। इसे मानव जानने मानने मे समर्थ है। इसे ध्यान में रखते हुए अथवा इस नजरिया से सम्पूर्ण वस्तुओ का पद और अवस्था, यथा स्थिति और वैभव को जानना मानना सहज है सुलभ है। सहज सुलभ के रूप में जानने की इच्छा हर मानव में है ही।

व्यापक वस्तु को इस तरीके से समझना संभव हो गया है, कि हर परस्परता के बीच निश्चित दूरियां होती ही है। इस दूरी की परिकल्पना और अनुभव होता है। यही

व्यापक वस्तु है क्योकि हर परस्परता के बीच दूरी के रूप में दिखाई पड़ने वाली वस्तु सभी परस्परता में एक ही है। जैसे दो आदमियों की परस्परता मे, दो जानवरो की परस्परता में, दो झाड़ो की परस्परता में, से दो प्राण कोषाओं की परस्परता में दो अणुओं की परस्परता में, दो परमाणु अंशो की परस्परता में, दो ग्रह गोलो की परस्परता में, अनेक ग्रह गोलो की परस्परता में, आकाश गंगाओं की परस्परता में यही व्यापक वस्तु समझ में आती है। व्यापक का मतलब सर्वत्र एक सी विद्यमानता है। ऐसी व्यापक वस्तु अपने में पारगामी, पारदर्शी के वैभव सम्पन्न है, क्योंकि परस्परता में एक दूसरे को पहचानना संभव है ही। इसी प्रकार सभी इकाइयों में पारगामी होना हर वस्तु ऊर्जा सम्पन्न होना क्रियाशीलता के रूप में प्रमाणित है, इसीलिए व्यापक वस्तु का नाम साम्य ऊर्जा भी है, ऊर्जा सम्पन्नता का फलन है बल सम्पन्नता और क्रियाशीलता। क्रियाशीलता श्रम, गति, परिणाम के रूप में विकासक्रम में स्पष्ट है। हर विकसित पद गठनपूर्ण परमाणु के रूप में पहचाना गया है। जीवन पद यही है। चैतन्य इकाई यही है। विकास क्रम में परमाणु, अणु, अणुरचित रचना और प्राणकोषा, प्राण कोषाओ के रूप में रचित रचना दृष्टव्य है। इसका अध्ययन मानव ने किया है, या करना चाहता है। साथ ही जीवन क्रियाकलाप जब तक शरीर को जीवन मानता रहता है, तब तक भ्रमित रहना स्वाभाविक है। जीवन और शरीर का स्पष्ट अध्ययन होने के उपरान्त जागृति का प्रमाण होना पाया जाता है। जागृति जीवन की स्वयं स्फूर्त अभीप्षा है। अभीप्षा का तात्पर्य अभ्युदय सम्पन्नता से है। अभ्युदय का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान से है। सर्वतोमुखी समाधान सह-अस्तित्व सहज और जीवन सहज दर्शन व प्रमाण है। ऐसा दर्शन जानने मानने के रूप में पहचाना गया है। जानने मानने वाली इकाई मानव ही है। इस प्रकार जानना मानना समझदारी के अर्थ में विज्ञान और विवेक के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। ज्ञान, विज्ञान, विवेक की सार्थकता की चर्चा पहले हो चुकी है। समझदारी ही ज्ञान है। यह सब शिक्षा विधि से बोधगम्य होना पाया जाता है। अनुभवमूलक विधि से ही मानव सहज लक्ष्य और दिशा को निर्धारित करना सहज होता है। हर मानव अथवा हर नर-नारी लक्ष्य और दिशा को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के लिए इच्छुक है। इसी कारणवश हर मानव अपने में समझदार होने के लिए आवश्यकता बनाये है।

समझदारी ध्रुवीकरण होना, समझदारी निश्चित होना अभी तक विचाराधीन रहा है। मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद के अनुसार अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में समझदारी ध्रुवीकृत हो जाती है। ध्रुवीकरण का तात्पर्य समझदारी का बोध और अनुभव होने से है। अध्ययनपूर्वक बोध होना, बोधगम्य समझदारी प्रमाणित

करने के अर्थ में अनुभव होना पाया जाता है। इस विधि से प्रत्येक मानव अध्ययन पूर्वक समझदारी से सम्पन्न होना संभव हो गया है । इसे सर्वसुलभ करने के क्रम में यह व्यवहारात्मक जनवाद मानव के सम्मुख प्रस्तुत है।

व्यवहारात्मक जनवाद का तात्पर्य समझदारी पूर्ण विधि से संवाद पूर्वक व्यवहार को ध्रुवीकरण करने की सम्पदा का समावेश हो, और प्रमाणित हो । समावेश होने का तात्पर्य मानव सहज विधि से अनुभवगम्य होने से है और स्वीकृत होने से है। इस क्रम में सदा-सदा से मानव परम्परा समझदार होने की अभीप्षा प्रमाणित होना सहज है। इसकी आवश्यकता प्राचीनकाल से ही रही है। मानव अपने को सदा से ही अपनी पहचान बनाने के क्रम में प्रमाणित है ही। यह प्रमाण भले ही सर्वभौम न हुआ हो, यह विचारणीय मुद्दा तो है ही। साथ में हर समुदाय में हर मानव श्रेष्ठता के अर्थ में प्रयत्नशील रहे आया इसी का देन है । हम मानव मनाकार को साकार करने में सार्थक हो गये है । इसी के साथ में मन:स्वस्थता की पीड़ा बलवती हुई है। इसी आधार पर अनुसंधान, शोध स्वाभाविक रहा । मानव में समस्या की पीड़ा होना स्पष्ट है अर्थात पीड़ा स्वयं भ्रम का ही प्रकाशन है । भ्रमित मानव समस्या के रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है । जब तक शिक्षा परम्परा भ्रमित हो राज्य और धर्म परंपरा भ्रमित हो, ऐसी स्थिति में शोध की दिशा और लक्ष्य समझ में आना काफी जटिल होता है। इसके बावजूद पीड़ा की किसी पराकाष्ठा में अज्ञात को ज्ञात करने का लक्ष्य बन गया। इसके लिये अनुमान से ही दिशा को निर्धारित किया गया । इसी क्रम में मध्यस्थ दर्शन और सहअस्तित्ववादी उपलब्धि मानव के सम्मुख प्रस्तुत हो गया। यह मानव की ही आवश्यकता रही इसीलिये यह घटना घटित हो गई।

अध्याय 4

व्यवहारवादी विचार की चर्चा

व्यवहारवादी विचार की चर्चा

सहअस्तित्व वादी विधि से लक्ष्य और दिशा के निश्चयन के लिए संवाद शुरू किया जाना संभव हो गया। सभी मानव सुख, शांति, समृद्धि को चाहते ही रहे है। सुख समाधान का ही अनुभव है। समाधान अनुभव में सुख है। और समस्या की पीड़ा ही मानव के सभी प्रकार के संकटों का कारण है। समस्याओं का निवारण समाधान से ही होना पाया गया है। समाधान मानव में ही प्रमाणित होने वाली समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी है। इसके आधार पर समाधान निरंतर प्रमाणित होना स्पष्ट हुआ है। समाधान हर व्यक्ति अथवा हर नर नारी चाहता ही है।

सहअस्तित्व रूपी दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान (सहअस्तित्व वाद में जीवन ज्ञान) और मानवीयता पूर्ण आचरणज्ञान के आधार पर ही समाधान और उसकी निरन्तरता का होना देखा गया है। समझा गया है और जिया गया है। अभी न्याय पूर्वक जीने के लिए जिये जाने के लिए आधार पर ही व्यवहार एक मुद्दा है।

व्यवहार में प्रधान पहचान मानव को मानव से सदा-सदा समाधान चाहिए ही। व्यवहार में समाधान को प्रमाणित करना ही प्रमुख लक्ष्य है। समझदार के साथ समझदार का व्यवहार समाधानित होना स्वाभाविक है। जो समझदार नहीं है उनके साथ एक समझदार मानव का व्यवहार काफी अड़चनों को समाधानित होना देखा गया है। किन्तु समाधान का पराभव नहीं होता है।

मानव के सम्मुख समस्याएँ पीड़ा के रूप में पहुंचती है, पीड़ा के रूप में प्रभावित होती है। भ्रमवश, प्राकृतिक प्रकोपवश, जीवो के आचरण वश पीड़ा, दुःख, रोग, भय भ्रम होना पाया जाता है। यह सब प्रकारांतर से पीड़ा ही है, समस्या ही है। मानव मानव के साथ व्यवहार में व्यतिरेक वश ,जो पीड़ाएं, समस्याएं होती है वे भ्रमवश ही होती है। भ्रमवश सभी कृत्यों के मूल में करने वाला अपने को ठीक करना ही माना रहता है। इसके परिणाम में अनेक लोगों के बीच में समस्याएं बढ़ जाती है।

मानव के भ्रमित रहने का मूल कारण परम्परा जागृत न रहना ही है। परम्परा का स्वरूप प्रधान रूप में शिक्षा-संस्कार, राज्य व्यवस्था, धर्म व्यवस्था है। हर मानव का आचरण परम्परा के अनुसार ही रहा है। परम्पराएं किसी न किसी अंतिम मान्यता अथवा मान्यता के आधार पर ही होना स्पष्ट है। सन् 2000 तक में सभी समुदाय परम्पराएं अपने-अपने ढंग की मान्यताओं के अनुसार आचरण को स्वीकारा है। हर समुदाय की मान्यता

अपने आचरणों को श्रेष्ठ मानते ही आयी है। श्रेष्ठता का ध्रुव बिन्दु सर्व स्वीकृति के रूप में तैयार नहीं हो पाया। ऐसे ध्रुव बिन्दु के अर्थ में ध्रुव बिन्दु को पहचानना समझना, व्यवहार मे प्रमाणित करना जन चर्चा का एक प्रधान मुद्दा रहा।

जनचर्चा में अभी भी इन बातो पर कभी कभी चर्चाएं हुआ करती है, इसका निष्कर्ष यही सुनने में आता है पाँच उँगलियाँ एक सी नहीं होती है सभी झाड़ एक से नहीं होते इसलिए अपने अपने ढंग से आचरण रहेगा ही। इसी को मानव में विविधता के अर्थ में स्वीकारा गया है साथ में यह भी चर्चा में आता है कि विविधता में एकता का पहचान जरूरी है। ऐसे संवाद आगे बढ़कर राज्य और संविधान के पास हो जाते है। राज्य संविधान सबको समान रूप में स्वीकार्य है। इसी को एकता के रुप में पहचानने का मूल तथ्य माना गया है। इसी बीच संविधान में प्रावधानित सभी धर्मो के प्रति एक रवैया को धर्म निरपेक्षता का नाम भी दिया ऐसे मान्यताओं पर आधारित संविधान के तले जीता हुआ हर सामान्य मानव में किसी न किसी समुदाय चेतना स्वीकृति, प्रतिबद्धता को सर्वाधिक प्रभावशाली देखा गया है न कि संविधान में प्रावधानित मानसिकता को। इस क्रम में अनेकता में पहचानी गई एकता खतरनाक होना देखा गया है। यह सर्वाधिक लोगो को विदित है निष्कर्ष यह निकला कि अनेकता में एकता का सूत्र रहता नहीं है यदि रहता है तो वह अति प्रच्छन्न होना देखा गया है। मानव परम्परा में मानवीयता ही एक मात्र एकता का सूत्र है। यह सूत्र अभी तक शरमालू रहता ही आया। शरमालू रहने का तात्पर्य हर समुदाय अपने को सही मानने के आधार पर मानवीयता का सूत्र अनुसंधान, शोध विधि से दूर रहता आया। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि हर समुदाय अपने को मानव, मानव धर्म कहना पड़ा। यह भी इसके साथ मान्यतायें बलवती रही जो जिस धर्म परम्परा के होते है उसका कोई नाम स्थापित हुआ, प्रचलित हुआ। उस प्रचलित नाम के आधार पर समुदाय अपने को सर्वश्रेष्ठ मानव समझा। इसीलिए इसमें जो प्रतिबद्धताएँ है कट्टरता को छूती रही। इसको स्पष्ट कहा जाये, हर समुदाय अन्य समुदायों के साथ मतभेद अथवा घृणा, उपेक्षा जैसे नजरियों को अपनाते आये हैं। सब रवैये मानव लक्ष्य और दिशा को अनदेखी में रखता ही रहा। फलत: मानवीयता का शोध, अनुसंधान उज्जवल स्पष्ट और चिन्हित रूप में पहचानने में नहीं आया। यही कारण रहा सभी जाति, मत,पंथ, सम्प्रदायों की संकीर्णता से उबरने के लिए मानवीयता को पहचानने की आवश्यकता बलवती हुई।

अध्याय 5

मानव का मूलरूप प्रवृतियों के आधार पर

मानव का मूलरूप प्रवृतियों के आधार पर

मानव, मानव के साथ जो भी करता रहा उसका व्यवहार नाम हुआ और मानवेतर प्रकृति के साथ जो किया वह सब उत्पादन कार्य कहलाया। व्यवहार व उत्पादन कार्यो का निश्चित, चिन्हित क्षेत्र स्पष्ट हो गया है। जितनी भी समस्याएँ उत्पादन विधा में बनी रही उनका निराकरण उपाय खोजते रहे और मानव की आवश्यकताओं के आधार पर वस्तुओं का निर्माण कार्य किये जैसे आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन वस्तुओं का मानव निर्बाध रूप से उत्पादन करने योग्य हो गये। इस क्रम में मानव अपने आश्वस्ति की जगह पहुंचने तक इन प्रौद्योगिकी विधाओं में प्रयुक्त ईंधन से उर्जा ग्रहण किये और उसके अवशेष धरती, जल और वायु को प्रदूषित कर दिया। वायु प्रदूषण का प्रबल प्रभाव धरती के वातावरण के शतांश में से तीस अंश को घटा दिया अथवा धरती के जितनी ऊंचाई में वातावरण फैला रहा, उसमें से सौ में से तीस भाग घट गया। यह सब विज्ञान विधा से प्रस्तुत वक्तव्य है। इस विधि से घटित सम्पूर्ण प्रदूषण मानव त्रासदी का प्रधान कारण हो गया है। इसमें से प्रधान कारण ईधन अवशेष ही रहा। इससे अनेक विपदाएँ धरती के सिर पर मँडराने लगी, इसके फल स्वरूप धरती ही ताप ग्रस्त हो गई। धरती का ताप विगत दशक के मध्यकाल तक शान्त रहा अर्थात पहले जैसा था वैसा ही रहा, अर्द्धदशक के बाद ताप बढ़ने के संकेत विशेषज्ञो को मिलने लगे। इसी बीच नदी, नाला, तालाब का पानी मानव उपयोगी नहीं रहा। फसल की स्वस्थता के भी प्रतिकूल हुई, फसल भी रोगी हुई। ऐसे प्रदूषित आहार से मानव कुल को अनेक प्रजाति के रोग पीड़ाएँ हो गई। मानव के लिए समुद्र के अतिरिक्त जो क्षेत्रफल है वह कम हुआ। इसी क्रम में धरती पर वन वनस्पतियाँ रही उसका सर्वाधिक शोषण होता ही रहा। आगे चलकर खनिजो के दोहन से धरती असंतुलित होने लगी। यह असंतुलन अपने आप में सर्वाधिक खतरनाक होना पाया जा रहा है।

धरती असंतुलित होने का तात्पर्य धरती पर ऋतुओं का असंतुलन है। ऋतुओ का तात्पर्य शीत, ताप, वर्षा और उसके अनुपात से है। साथ में भूमध्य रेखा से उत्तर-दक्षिण क्षेत्रो में परम्परागत अनुपात से विचलित होने से है। ऐसे असंतुलन को प्रकारान्तर से सभी मानव विभिन्न भाषाओं से संवाद में प्रस्तुत करते रहे।

ऋतु असंतुलित होने से निश्चित भू-क्षेत्रों में होती हुई फसल चक्र बिगड़ने से कृषि के प्रति उदासीनता छा गई अथवा कृषि का व्यापारीकरण हो गया। कुछ लोग अभी भी

कहते हैं कृषि उद्योग। विचारणीय मुद्दा यही है कृषि में मानव का सहज श्रम, धरती की उर्वरता, ठंडी, गर्मी, पानी का संयोग और हवा बयार के संयोग से फसल होते देखा गया। ऐसे पावन कृत्य धीरे धीरे उदासीनता के पक्ष में हुए।

अन्ततोगत्वा सर्वाधिक कृषक कृषि से विमुख होने के लिए परिस्थिति बाध्य हो गये। इन तथ्यों को सर्वेक्षण पूर्वक पता लगा सकते हैं। मुख्य मुद्दा यही हुआ कृषि मानव के लिए प्रथम आवश्यकता है कि नहीं ? इस पर सार्थक संवाद होना है। यदि हाँ, तो आज की स्थिति पर सफलता का ताना बाना क्या रहेगा, कैसे रहेगा, इसका परिशीलन होना परम आवश्यक है।

आवश्यकता पर जब नजर डाली गयी कृषि सर्वप्रथम आवश्यकता है। मानव कुल को सर्वप्रथम आश्वासन, इस धरती पर कृषि में सफल होने के आधार पर ही घटित हुई है। आज भी कृषि उत्पादन सर्वश्रेष्ठ सर्वाधिक उपयोगी है। इसलिए इसकी परम आवश्यकता है। कृषि सम्पदा अपने में आश्वस्त रहने के लिए अर्थात कृषक आश्वस्त विश्वस्त रहने के लिए धरती के साथ उर्वरकता, जल संसाधन, बीज परम्परा और ऋतु कालीन कीट नियंत्रण, औषधियों का ज्ञान और कर्म अभ्यास सम्पन्न रहना आवश्यक है। तभी कृषक कृषि करने के विश्वास को बनाए रख पाता है। आज की स्थिति में मानव लाभकारिता के आधार पर कृषि कार्य करने की सोचता है। जबकि कृषि समृद्धिकारी है। इसके आधार पर कृषि को पहचानने की आवश्यकता है। कृषि को लाभ हानि मुक्त समृद्धकारी वस्तु के रूप में स्वीकारने की जरूरत है।

कृषि के साथ पशु पालन एक अनिवार्य कार्य है साथ में अविभाज्य भी है। इस पर भी विधिवत जनचर्चा और परामर्श की आवश्यकता है। पशुपालन धरती की उर्वरकता को संतुलित बनाए रखने का सर्वोपरि उपाय है अथवा अंग है। पशुओ के मल-मूत्र द्वारा सर्वाधिक श्रेष्ठतम विधि से धरती को उर्वरक बनाना सर्वाधिक लोगो को विदित है इससे अच्छी उपज और किसी उर्वरक से नहीं है। इसी के साथ साथ दूध, घी भी उपलब्ध होना एक सहज उपलब्धि है। यह मानव के आहार पदार्थो में सर्वश्रेष्ठ और उपयोगी माना गया है निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक जाना भी गया है। परिश्रम के लिए भी जानवरो की महत्वपूर्ण भूमिका को, उपयोगिता को मानव पहचान लिया, इस प्रकार पशुपालन का बहुमुखी उपयोग सुस्पष्ट होता है। पशुओ के मृत्यु होने के उपरान्त भी हड्डी धरती की उर्वरकता के लिए महा-उपयोगी, चमड़े मानव के पदत्राण अर्थात जूते के रूप में उपयोगी, झोले आदि के रूप में उपयोगी होना मानव पहचान लिया है। इस तरह पशुपालन एक सार्थक परम्परा

है। इसके महत्व को अनदेखी किये जा रहे हैं इससे मानव और धरती क्षतिग्रस्त होना स्वाभाविक है।

मानव अपने को सदा-सदा कृषि कार्यपूर्वक अन्न समृद्धि को अनुभव करता रहा। आज भी यह मुद्दा आदिकाल के अनुसार ही है। इसको जनचर्चा में शामिल होना, इस पर भरोसा पाने के लिये उचित तर्क, उचित सिद्धान्त, स्रोत, व्याख्या पूर्वक स्वीकृति स्थली में पहुंचना आवश्यक है।

मानव कृषि सम्पन्नता बनाए रखने के क्रम में समृद्धि प्रधान उद्देश्य :

आदिकाल से मानव परम्परा में उपलब्धियों की दिशा में आहार की उपलब्धि प्रथम रही। इस मुद्दे में सन्तुष्टि पाने के लिए पत्ते, कन्द, मूल जीव जानवरों की हत्या कर माँस सेवन से कृषि पूर्वक अनाजो की उपलब्धि तक पहुंचे। शनैः शनैः पत्ते कन्द मूल सेवन की प्रथा सर्वाधिक उन्मूलन हो गयी, जहाँ तक जीव जानवरों को हत्या कर मांस-भक्षण की परम्परा यथावत बनी ही है। इसमें परिवर्तन यही हुआ है पहले जंगली जानवरो पर निर्भर रहे अब सर्वाधिक पालतू जीव जानवरो को मारकर मांस प्राप्ति की विधि को अपना चुके है। इस विधि से मानव शाकाहार मांसाहार के पक्ष में अपनी रूचि की मानसिकता को तैयार कर लिया।

इस बीच विज्ञान युग का अपनी पूरी ताकत से प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए विज्ञान की जब शुरूआत हुई तब विज्ञान मानसिकता मन्दिर गिरजाघर की मानसिकता के अनुकूल नहीं रही। इसीलिए सर्वाधिक मन्दिर गिरजाघर विज्ञान को नकार दिये। जब तक यह परम्परा रही कि राजा धर्मगद्दी धारी व्यक्ति की सहमति से राज्य व्यवस्था को सम्पन्न करते थे तब तक धर्मगद्दी की कट्टरता अतिरूढ़ थी। इन विरोधी मानसिकताओं में जो कुछ भी विज्ञान शिक्षा के प्रस्ताव आते रहे, उन सबका खंडन और दंड तक पहुँचा। तब विज्ञानियों ने अपने विवेक से राजाओ को समझाया कि आपको युद्ध करना ही है। युद्ध व्यवस्था रखना ही है। तो विज्ञान आपको सामरिक सामग्री उपलब्ध करायेगा। पहले ही एक राजा दूसरे राजा पर विजय पाने की इच्छा रखता था इस आधार पर राजा लोग सहमत हो गये। विज्ञानियों को संरक्षण देने का उद्देश्य बनाया। इसी बिन्दु से राज्य और धर्म गद्दी का अलगाव होना शुरू हुआ। इस क्रम में विज्ञान अपने प्रयोगो के लिए आवश्यक धन को राजगद्दी से प्राप्त करते रहे। सामरिक तंत्र की तीव्रता को प्रमाणित करने का प्रयोग तेज होता गया। इसी क्रम में कई वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन मानस अपनाने को तैयार हुआ। दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, दूर-गमन, के रूप में यंत्र उपकरण

सर्वसुलभ हुए। इन सबको मानव ने उपयोग करना शुरू किया। इसके अतिरिक्त कृषि संबधी उत्पादन में एवं आवासीय संरचनाओं में उपयोगी वस्तुओ को भी तैयार कर लिए। इसी क्रम मे अलंकार संबधी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने लगी। विज्ञान अपने वर्चस्व को उक्त सभी विधाओ में स्थापित कर लिया। मानव इन सब वस्तुओ को सुखी होने के लिए पाना चाहता है। किन्तु एक व्यक्ति जितना संग्रह कर लेता है उतना सब के पास नहीं होता है। यह भी जनचर्चा का एक मुद्दा है। ये सारी सुविधाएँ सबको कैसे मिल सकती है ? क्या करना होगा ? इसको निर्धारित करना भी एक मुद्दा है। उपलब्ध सभी वस्तुओं से मानव सामान्याकांक्षा, महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओ के प्रति आश्वस्त हुआ। अन्ततोगत्वा सभी वस्तुओ का प्रयोजन शरीर पोषण, संरक्षण, समाजगति के रूप में होना ही निश्चित है। इन तीनो विधाओं में उपयोग करने के उपरान्त वस्तुओं का शेष रहना ही समृद्धि है। तभी मानव उपकार कार्य करने में प्रवृत होता देखने को मिलता है। उपकार कार्य हर मानव संतान को समर्थ बनाने के अर्थ में सार्थक होता हुआ देखा गया है।

मानव कुल शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति में तृप्त होने का इच्छुक रहा ही है। यही इच्छा पूर्ति नहीं हो पाई क्योंकि संग्रह और सुविधा के अर्थ में सारे वस्तुओ को मूल्यांकित करने की आदत मानव में समावेशित हो चुकी है। संग्रह, सुविधा का तृप्ति बिन्दु को पहचानने के पक्ष में परामर्श करने पर पता चलता है कि इन दोनों का तृप्ति बिन्दु मिलता नहीं।

मानव परम्परा के इतिहास के अनुसार सामान्य और महत्वाकांक्षा सम्बंधी वस्तुओं की उपलब्धि जैसे-जैसे हुई उससे तृप्त होने की इच्छा मानव में होती रही। उसके बाद किसी वस्तु की कमी महसूस होती थी तो उसके मिलने से तृप्त हो जायेगें, सुखी हो जायेंगे ऐसा सोचते थे। संयोग वश आज सभी वस्तुएँ उपलब्ध हो गई, कई लोग प्राप्त भी कर लिये, इसके बावजूद सुखी होने का लक्षण कहीं उदय हुआ नहीं। इस आधार पर मानव का लक्ष्य क्या हो सकता है ? इस मुद्दे पर परामर्श पूर्वक सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि मानव सुविधा संग्रह, भोग, अतिभोग की ओर प्रवृतित होता देखा गया। यह भी तृप्ति विहीन प्रयोग साबित हुआ। इस क्रम में पुनः विचार की आवश्यकता हुई।

सहअस्तित्ववादी मानसिकता के आधार पर वस्तुओं का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता को हम परखते है। मानसिकता में बदलाव हुआ और सहअस्तित्ववादी विधि से जीना उद्देश्य हुआ। ऐसे उद्देश्य से स्पष्ट हुआ तभी उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता समझ में आ गयी। मानव का लक्ष्य जागृति के उपरान्त समाधान, समृद्धि,

अभय, सहअस्तित्व के रूप में पहचाना गया। इनमे से समझदारी का प्रयोग है उसका शुभ परिणाम ही समाधान रूप में अनुभव होना पाया जाता है। हर शुभ परिणाम सफलता का द्योतक होता है। हर विधा में, हर आयाम में मानव सफलता पाना चाहता है। सहअस्तित्व विधि से यह हर मानव के लिए समीचीन है। क्योंकि समझदारी सबके लिए सुलभ होने की विधि अपने आप में जागृति का प्रमाण है। जागृति अनुभव की अभिव्यक्ति है। अनुभव सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में होता है। यह अनुभव न तो ज्यादा होता है न कम होता है। इस प्रकार अनुभव अपने में परम शाश्वत होना पाया जाता है। इसीलिए अनुभवमूलक विधि से ही हर मुद्दे में तृप्त होने की सहज स्थली बनी हुई है। तृप्ति जीवन सहज प्यास है। तृप्ति के उपरान्त तृप्ति के लिए हुई प्यास समाप्त हो जाती है। इसके फलन में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व, अभयतापूर्वक सहअस्तित्व का प्रमाण वर्तमानित रहता है यही तृप्ति का स्रोत है।

समाधान के लिए समझदारी का होना अनिवार्य है। समझदारी के प्रयोग से ही हम समाधान पाते है। समाधान के उपरान्त ही परिवारगत आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने का तौर तरीका सुलभ होता है, सम्भावना पहले से ही रहती है। सम्भावनाओं को पहचानना समझदारी पूर्वक अति सुलभ हो जाता है समाधान, समृद्धि के फलस्वरुप उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता विधि से अभयता अपने आप में उद्गमित होती है यही वर्तमान में विश्वास होने का प्रमाण है। ऐसी प्रतिष्ठा का प्रभाव सहअस्तित्व में प्रमाणित होना सुलभ होता है यही जागृति है। इससे स्पष्ट हो गया कि हम मानव जागृति पूर्वक ही सम्पूर्ण वस्तुओं की उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता को प्रमाणित करते है जिससे तुष्टि बिन्दु अर्थात् समाधान बिन्दु तक पहुंचना सुलभ हो जाता है। इसी सम्पदा के साथ हम सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति सम्पन्न हो जाते है। यह तृप्ति की निरन्तरता का प्रमाण है। तृप्ति समाधान और प्रामाणिकता प्रमाण एक दूसरे के पूरक विधि से क्रियान्वयन होते ही है। यही जागृत मानव परम्परा की पहचान है।

जागृत मानव ही इस धरती पर मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में जीने के अधिकार से सम्पन्न होते हुए देखने को मिलते है। अधिकार स्वत्व का ही होता है इसके फलन में स्वतंत्रता प्रमाणित होती है। समझदारी स्वत्व रूप में, प्रयोग एवं व्यवहार करने के रूप में अधिकार, इसको सार्थक बनाने के क्रियाकलाप के रूप में, स्वतंत्रता सार्थक होते हुए देखने को मिलती है। हर व्यक्ति अपने को सार्थक सिद्ध करना चाहता ही है। सार्थकता ही पहचान का आधार है। जिससे सकारात्मक फलन प्रमाणित होते ही रहता

है। सकारात्मक फलन का तात्पर्य न्याय और समाधान पूर्वक जीने से और शाश्वत सत्य को प्रमाणित करने से है। यही जागृति पूर्वक जीने का प्रमाण है। यही मानव परम्परा का वैभव भी है। इसी वैभव वश मानव में अखंडता, सार्वभौमता का प्रमाण उदय होता है। जिससे परिवारगत आवश्यकताओं के संयत समृद्ध होने की सम्भावनाएँ अधिक बन जाती है।

भ्रमवश हम मानव यही कहते रहे हैं कि आवश्यकता अनंत है साधन सीमित हैं। इसलिए संघर्ष करना जरूरी है। छीना-झपटी, शोषण ही संघर्ष का रूप हुआ। ऐसे घृणित कार्य करते हुए भी श्रेष्ठता का दावा किया, बेहतरीन जिन्दगी का दावा किया। यह कहाँ तक न्याय हुआ ? इस मुद्दे पर भी जनचर्चा की आवश्यकता है। भ्रमित जन मानस में भी न्याय, धर्म, सत्य की अपेक्षा रूप में स्वीकृति बनी हुई है किन्तु उसी के साथ-साथ परम्परा में इसकी प्रामाणिकता की उपलब्धता नहीं रहने के कारण मानव अपने अपने तरीके से जीवों से अच्छा जीने के स्वरूप को बना लेता है। जीने के क्रम में आहार, विहार, व्यवहार, उत्पादन, कार्य का निश्चयन आवश्यक है। प्रकारान्तर से मानव इसे अनुसरण किये रहता है।

आहार के बारे में पहले ही यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि मानव शाकाहार मांसाहार को पहचान चुका है एवं इनका अभ्यासी भी है। इन दोनो प्रकार के आहार विधा में विविध प्रकार से व्यंजनो को बनाने और व्यंजनों को शोध करने केकार्यक्रमों को कर ही रहा है। इसकी आवश्यकता है कि नहीं, यह भी संवाद का मुद्दा हो सकता है। संवाद आवश्यकता के आधार पर सोचने पर पता चलता है कि मानव के निश्चित आचरण को पहचानना आवश्यक है। आचरण का निश्चयन इसीलिए अपरिहार्य हो गया है कि मानव अपने में बहुमुखी अभिव्यक्ति है, दूसरी भाषा में सर्वोतोमुखी अभिव्यक्ति है। व्यक्त होने के क्रम में आचरण रहता ही है। मानव और मानव के आचरण को विभाजित नहीं किया जा सकता, अविभाज्य रूप में यह वर्तमान रहता ही है। ऐसी उत्सववादी क्रियाएँ आगे चलकर एक कोशी, बहुकोशी रचना वैभव को प्रकाशित किया है और इसी क्रम में मानव शरीर रचना भी बहुमूल्यवान रचना होना मानव में, से, के लिए आंकलित हो पाता है।

शरीर रचना क्रम में निश्चित आचरण परम्पराएँ स्थापित हो चुकी हैं इनमें से मानव का आचरण भी निश्चित होना एक आवश्यकता रही आयी है। निश्चित आचरण के साथ ही मानव का व्यवस्था में जी पाना संभव है। व्यवस्था में जीना और आचरण को अलग अलग नहीं किया जा सकता। इसके मूल में आहार-विहार, प्रवृति, व्यवहार

प्रवृतियाँ एक दूसरे से अनुबंधित रहते है । व्यवस्था में जीने के लिए और व्यवस्था को प्रमाणित करने के लिए आचरण एक महत्वपूर्ण आयाम है । आचरण के मूल में विचार, विचार के मूल में विज्ञान और विवेक, विज्ञान और विवेक के मूल में ज्ञान, ज्ञान के मूल में सहअस्तित्व अनुबंधित रहना पाया जाता है । इस प्रकार मानव को व्यवस्था में जीने की आवश्यकता बनी ही रहती है । व्यवस्था मे जीना ही समाधान का प्रमाण है । मानव के संदर्भ में व्यवस्था में जीकर समाधान को प्रमाणित करने की आवश्यकता है ही । यह मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक ही प्रमाणित होता है ।

मानवीयता पूर्ण आचरण अपने में त्रिआयामी अभिव्यक्ति है मूल्य, चरित्र और नैतिकता । अभिव्यक्ति का तात्पर्य अभ्युदय के अर्थ में होने से है अभ्युदय अपने में सर्वतोमुखी समाधान ही है । सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक होने के आधार पर मानव को ज्ञानावस्था की इकाई के रूप मे पहचाना गया है । समझ अपने में बहुआयामी स्वीकृति होने के आधार पर हर आयाम में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी और पूरकता यह निश्चयन होना ही स्वीकृति का मतलब है । इन स्वीकृतियों के आधार पर मानव में अपने लक्ष्य को पहचानने का सूत्र तैयार हो जाता है अथवा सूत्र स्वयं स्फूर्त होता है । व्यवस्था में जीने के लिए हर व्यक्ति में समाधान अर्थात उन-उन विधा में प्रमाणित होना आवश्यक है । मानव से जुड़ी हुई विधाएँ प्रधानत: पांच स्वरूप में पहचानी गई है जिसमें मानव सहअस्तित्व विधि से समाधान को प्रस्तुत करना अथवा समाधान पूर्वक निर्वाह करना ही है ।

शिक्षा-संस्कार विधा में सहअस्तित्व और प्रमाणों को प्रस्तुत करना ही कार्यक्रम है । इसे क्रमिक विधि से प्रस्तुत किया जाना मानव सहज कर्तव्य के रूप में, दायित्व के रूप में स्वीकार होता है । मानवीय शिक्षा में जीवन एवं शरीर का बोध और इसकी संयुक्त रूप में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन और दिशा बोध होना ही प्रधान मुद्दा है । इन मुद्दो पर संवाद होना आवश्यक है ।

जीवन और शरीर अलग-अलग महिमा सम्पन्न इकाई होते हुए इनकी अभिव्यक्ति में निरन्तर एक परम्परा का स्वरूप बना ही है। इसी का नाम मानव परम्परा है । मानव परम्परा में शरीर की काल अवधि होती है, और शरीर आयु मर्यादा के आधार पर कार्य मर्यादा को प्रकाशित करता है । हर पीढ़ी आगे पीढ़ी और आगे पीढ़ी पीछे पीढ़ी से ऐसी अपेक्षाएँ बनाए रखती है, आयु के आधार पर ही यह अपेक्षा बनी रहती है । इसकी औचित्यता पर विचार करने से पता लगता है मानव अपने में आयु की महिमा, प्रवृति को

स्वीकारे हुआ रहता है।

शरीर के साथ आयु मर्यादा की गणना हो पाती है, शरीर परिणाम कारी होना स्पष्ट है। आयु मर्यादा हमेशा प्रभावशील रहता ही है। इसी के साथ कार्य प्रवृतियाँ मेधस तंत्र द्वारा संवेदनशील और संज्ञानशील कार्यक्रमों को स्पष्ट कर देती है। जीवन में ही संवेदनशीलता का, संज्ञानशीलता का आस्वादन हो पाता है। संज्ञानशीलता जीवन का स्वत्व होना पहले से ही सुस्पष्ट हो चुका है। समझदारी अर्थ स्वीकृति के साथ जीवनगत होना, जीवन ही दृष्टा पद में होना इसलिए दृष्टा (जीवन एवं शरीर का संयुक्त रूप में), कर्ता, भोक्ता होना देखा गया है।

हम इस प्रमाण को पहचान सकते है कि जीवन ही दृष्टा है और शरीर को जीवन्तता प्रदान करता है। जीवन्त शरीर में ही संवेदना स्पष्ट होती है। जीवन अपने कार्य, गति, पथ के साथ इकाई होना स्पष्ट हो गया है। कार्य गति पथ के साथ ही जीवन पुंज के मूल में एक गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में होना जिक्र किया जा चुका है। यही जीवन पद है। जीवन पद अपने में संक्रमण क्रिया है। संक्रमण का तात्पर्य जिस अवस्था पद प्रतिष्ठा में पहुँच चुके उससे पीछे की स्थिति मे नहीं जा पाना। यह भी एक स्वयं स्फूर्त स्थिरता का प्रमाण है। जीवन पद में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त रसायनिक भौतिक क्रियाकलाप का दृष्टा हो जाता है। जीवन अपने में रासायनिक भौतिक क्रियाकलापो से अछुता रहते हुए रासायनिक भौतिक द्रव्य से रचित शरीर को जीवन्त बनाये रखना जीवन को स्वीकृत है।

जीवन की स्वीकृति अपने में निरन्तर बनी ही रहती है। इसी क्रम में हर जीवो को वंशानुषंगी शरीर क्रिया के अनुसार जीवंत बनाये रखता है। अर्थात संवेदनशीलता का प्रमाण प्रस्तुत कर देता है। ऐसे ही संवेदनाओं को प्रमाणित करने के क्रम में अलग-अलग पहचान उन उन के आचरणो के रूप में प्रस्तुत हो गई है।

जीवन मानव शरीर को भी जीवन्त बनाए रहता है इसी के साथ जीवन अपनी तृप्ति को क्रिया पूर्णता, आचरणपूर्णता के रूप में प्रमाणित करने को प्रयासरत रहता है। इसी महत्वपूर्ण कारणवश संवेदनाओ से जीवन तृप्ति नहीं हो पाई। इसका प्रमाण हर मानव में जागृति क्रम, जागृति का परीक्षण, निरीक्षण हो पाना है। इसी सत्यतावश हम सार्थक संवाद के मुद्दे के रूप में इसे स्वीकार सकते है।

मानव में यह सुस्पष्ट होता है कि हर संवेदना के प्रयोग के उपरान्त भी उस संवेदनशील क्रिया से मुक्ति पाना चाहता है इस विधि से इस निष्कर्ष में आते है कि मानव

पांचो संवेदनशील क्रियाओं मे तृप्ति बिन्दु पाया नहीं। इसका ज्वलंत उदाहरण मानव सर्वाधिक संग्रह सुविधा संवेदनाओं की तृप्ति के लिए ही जोड़ा और आगे पीढ़ी की आवश्यकता है इसे सोचा। इन ही तथ्यों के आधार पर मानव अपार संग्रह सुविधा को पाते हुए अथवा जो पाये है उनमें तृप्ति का प्रमाण तो हुआ भी नहीं, और संग्रह सुविधा की प्यास अति की ओर होता हुआ मिला। यह ही इस बात का द्योतक है तृप्ति बिन्दु और कही है।

तृप्ति के लिए हर मानव तृषान्वित है ही। इसका निराकरण समाधान पूर्वक होना देखा गया। समाधान अपने आप मे सुख रूप में अनुभूति होना पाया गया। अनुभूति की निरंतरता होना भी स्पष्ट हुआ। इसकी पुष्टि में ही समाधान समझदारी की आवश्यकता निर्मित हुई, समझदारी के साथ ही हम हर कोण, आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में हर देश कालो में जागृत परम्परा के आधार पर अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना बनता है।

इस तथ्य को भली प्रकार से देखा गया है, समझा गया है, कि हर मानव तृप्ति पूर्वक ही जीने का इच्छुक है। ऐसी तृप्ति, सुख ,शांति, संतोष, आनंद के रूप में पहचान में आती है। ऐसी पहचान जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के फलस्वरुप प्रमाणित होना पायी गयी। सुख, शांति, संतोष, आनंद अनुभूतियाँ समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का प्रमाण के रूप में परस्परता में बोध और प्रमाण हो जाता है। ऐसी बोध विधि का नाम ही है शिक्षा-संस्कार। शिक्षा का तात्पर्य शिष्टता पूर्ण अभिव्यक्ति से है। ऐसी शिष्टता अर्थात मानवीय पूर्ण शिष्टता समझदारी पूर्वक ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। इसकी आवश्यकता के लिए जनचर्चा भी एक अवश्यंभावी क्रियाकलाप है। जनसंवाद अर्थात मानव में परस्पर संवाद प्रसिद्ध है। संवाद के अनन्तर संवेदनशीलता का ध्रुवीकरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया रही है। ये प्रक्रियाएं क्रम से तृप्ति की अपेक्षा में ही संजोया हुआ पाया जाता है। सभी मानव संवेदनशीलता से परिचित है ही, संज्ञानशीलता की आवश्यकता शेष रही ही है। समस्या समाधान के क्रम में प्रदूषण के संबंध में सोचना और निष्कर्ष निकालना हर मानव का कर्तव्य बन गया है। क्योंकि इससे उत्पन्न विपदाएँ हर मानव के लिए त्रासदी का कारण बन चुकी है। इससे उत्पन्न विपदाएँ हर मानव के लिए त्रासदी का कारण बन चुकी है। इससे मुक्ति पाना हर मानव के लिए आवश्यक है। वन, खनिज, औषधि संपदाए समृद्ध रहने की स्थिति में ॠतु संतुलन, वन वनस्पति औषधियों के अनुकूल रूप में परिणीत होने के उपरान्त मानव का अवतरण धरती पर आरंभ हुआ है। और मानव अपने तरीके से सोचते

समझते मनाकार को साकार करने के क्रम में वन, खनिज, औषधि, जलवायु संपदा को उपयोग, प्रयोग, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक इनके साथ अपनी अनुकूलता के लिए प्रयोग करता ही आया। इस क्रम में सर्वाधिक वनों का विध्वंस और खनिजों का शोषण होना पाया गया।

सही अध्ययन मानते हुए शुरूआत से अभी तक विज्ञान सम्मान पाया है । जनमानस में अर्थात जो विज्ञानी नहीं है उनमें विज्ञान का सम्मान स्थापित हुआ। इसके बावजूद वन खनिजों का विध्वंस, खनिज के शोषण को नियति विरोधी होना पहचान नहीं पाया। ईंधन को हम वन से, खनिज कोयला से, और विकरणीय धातुओं के आवेशन प्रणाली से प्राप्त किये। इसी का अवशेष प्रदूषण के लिये सम्पूर्ण कारण बन पड़ा है। यह भी एक मुद्दा है जनचर्चा है कि इससे विज्ञान संसार चिन्तित होने की आवश्यकता है कि नहीं ? इस मुद्दे पर विस्तृत विचार संवाद की आवश्यकता है ही। यह तथ्य हमें समझ में आया है कि मानव अज्ञानी हो, मुर्ख हो, किन्तु सामान्य ज्ञान से संपन्न रहता है। ऐसा सामान्य ज्ञान संवेदनशीलता की पहचान के रूप में गवाहित रहता है। ऐसे व्यक्ति भी किसी आपदाओं को स्वीकार नहीं पाते, तथा इसके निवारण का उपाय भी सुझ में आना चाहिये। मानव का संवाद परस्परता में अभ्यस्त होते होते तर्क सुलभ कर ही लेता है। क्योंकि हर मानव में संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता का झलक बना ही रहता है। इसी आधार पर तर्क अपने आप से संवेदनशीलता के ढांचे-खांचे में पहुंच ही जाते है। इसी क्रम में हर मानव में इस तथ्य को चर्चा में लाने का अपेक्षा होना, प्रयास होना आवश्यक है।

प्रदूषण का मूल रूप ईंधन अवशेष तभी रूक सकता है जब ईंधन अवशेषवादी द्रव्यों का प्रयोग बंद कर दिया जाय। इसमें सर्वप्रथम खनिज कोयला तेल को बंद करना परम आवश्यक है। इसके बाद या इसी के साथ विकरणीय द्रव्यों का आवेशण से प्राप्त करने वाली उष्मा पद्धतियों को सर्वथा त्याग देना चाहिए। क्योंकि जितने भी विकिरणीय प्रदार्थ है वे सब ब्रम्हाडीय किरणों के रूप में कार्यरत रहने के लिये बने है। ब्रम्हांडीय किरणें सदा-सदा रसायनिक भौतिक क्रियाओं को सुदृढ़ और क्रमिक विकास से जोड़ने का अनुपम कार्य करती रहती है। इसको समझने की आवश्यकता है।

इस धरती पर अथवा इस धरती में विकिरणीय पदार्थो का होना स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवस्थित है। व्यवस्थित होने का तात्पर्य विकिरणीय पदार्थ अजीर्ण परमाणु के रूप में धरती में स्थित है। यह विकिरणीयता धरती को समृद्ध बनाने में सहायक होता हुआ इस

ढंग से गवाहित हुई कि धरती पर पानी विकिरणीय विधि से अथवा विकिरणीय पद्धति से बना। पानी के बाद भी इस धरती को वन से खनिज से संतुलित रूप में सजाने के लिये विकरणो का योगदान बना रहा। इसकी गवाही यही है यह धरती वन खनिज से संतुलित होने के उपरान्त ऋतु संतुलन होना स्वभाविक रहा। इसी क्रम मे वन खनिज संतुलन के बाद वन्य प्राणियों में संतुलन, समृद्धि के उपरान्त ही मानव का अवतरण, इस धरती पर अवतरित होना स्वाभाविक रहा। मानव ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में इस धरती पर अपनी अभिव्यक्ति को मनाकार को साकार करने के साथ साथ मन:स्वस्थता से समृद्ध नहीं हो पाया। यही मानव कुल में अवांछनीय घटनाओं का कारण बन गया। मानव को मन:स्वस्थता को प्रमाणित करने के क्रम में प्रवृतित होना आवश्यक है। इन्हीं सब तथ्यों का परिशीलन करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है तत्काल मानव कुल से, नियति विधि से, प्राकृतिक विधि से, व्यवहार विधि से जितने भी उपद्रव, क्लेश, कष्ट, समस्याएँ निर्मित होते जा रहे है वे सब समाप्त हो सकेंगे। तभी मानव का नियति सम्मत, प्रकृति सम्मत, स्वस्थ मानव, सम्मत विधियों से जीना हो जाता है।

हम मानव सदा से उत्पीड़नों से मुक्त होना चाह ही रहे है। किन्तु ऐसी मुक्ति का ज्ञान, विज्ञान, उपाय, विवेक समृद्ध होने का क्रम शिथिल है ही। इसका साक्ष्य यही है किसी समुदाय परम्परा मे अखण्ड समाज का सूत्र, व्याख्या, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र व्याख्या, राज्य संविधान, शिक्षा धर्म संविधान विधि से प्राप्त नहीं हुआ। इसी कारणवश अप्रत्याशित घटनाओ के चक्कर में आ चुके है। अप्रत्याशित घटनाओं को इस तरह से पहचाना जा रहा है। सर्वप्रथम प्रदूषण, द्वितीय धरती का तापग्रस्त होना, तृतीय दक्षिणी उत्तरी ध्रुव का बर्फ पिघलकर समुद्र का स्तर बढ़ना, चौथा अनेक नये-नये रोग मानव परम्परा में आक्रमित होना, पाँचवां धरती, आकाश, अधिकांश पानी में किये गये विकिरणीय परीक्षणों से भूकम्प की सम्भावनाये और घटनाये बढ़ जाना, छठा सामरिक तंत्रों का ज्यादा से ज्यादा जखीरा बनना, सातवां अन-अनुपाती विधि से वन खनिज का शोषण होना, आठवां रसायन खाद और कीटनाशक द्रव्यों का सर्वाधिक उपयोग होना, नवां मिलावट का बढ़ोतरी होना, ये सब मानव कुल को क्षति ग्रस्त होने को तैयार कर लिए है। जन संवाद में इन सभी मुद्दो पर परिचर्चा, चर्चा, संवाद पूर्वक निष्कर्षो का निकालना एक आवश्यक क्रिया है।

उक्त बिन्दु सभी ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी, अधिकारी, कर्मचारी, नेताजनों को

विदित है ही। इसके बावजूद विपरीत परिस्थितियों के लिए प्रोत्साहनवादी कार्य करते हुए देखने को मिलते है। इनमे से अज्ञानी और गरीब कहलाने वालों की उक्त नौ प्रकार के अपराधो में न्यूनतम सहभागिता है। गरीब-अमीर, ज्ञानी-अज्ञानी, विद्वान-मूर्ख, बलि-दुर्बली ये चार प्रकार की सविपरीत स्थितियां सुदूर विगत से पहचानने में आई है। क्या इसे यथावत रहने देना है या इसका उपाय खोजना चाहिए। इस पर हमारे सोच विचार को विशाल रूप देने पर तथा सर्वशुभ को ध्यान में लाने पर यह पता लगता है अस्तित्व में इस प्रकार की दूरी का कोई आधार नहीं है। मानव परम्परा में चारो प्रकार से बनी दूरी मानव में, से, के लिए तैयार की गई है। तर्क विधि से जो बना है वह मिट भी सकता है। इस सिद्धान्त का प्रयोग मानव के साथ जुड़ा हुआ दिखाई देता है। अतएव मानव ही इसे दूर करने में समर्थ है क्योंकि मानव ही इसका कारण होना स्पष्ट हो गया है। इस बात को हम भली प्रकार से समझ चुके है। ज्ञान विद्धता को लोक व्यापीकरण करने के क्रम में उनकी दूरियां समाप्त होना स्वाभाविक है। सह-अस्तित्ववादी विधि से ज्ञान और विद्वता का लोक व्यापीकरण का प्रमाण ही हर परिवार समाधान, समृद्धि सम्पन्न होना।

इससे गरीबी अमीरी की दूरी समाप्त होना स्वाभाविक है। चौथा मुद्दा बली दुर्बली की बात आती है, इस मुद्दे पर समझदार मानव परिवार होने के उपरान्त दुर्बल के साथ दया पूर्वक व्यवहार करने का आवश्यकता आता ही है। कोई दुर्बली होता है वह भी किसी परिवार मे होता है अन्य के साथ उसका सम्बन्ध बना ही रहता है। हर समझदार परिवार में आयु, स्वास्थ्य विविधता रहती ही है। आयु अपने में नियतिक्रम वर्तमान है ही। अभी तक मानव द्वारा अपने अपने समुदाय परिवार व्यक्ति के संदर्भ में संग्रह सुविधा को एकत्रित करने के लिए नौ प्रकार की गलतियाँ किया जाना देखा जा रहा है। इसलिए स्वास्थ्य विधा में जब तक प्रकृति अर्थात वन, खनिज, औषधी, द्रव्य वनस्थ जीवों और जीवों में सन्तुलन और ऋतु संतुलन पुनः उदय होने तक बली दुर्बली की सम्भावना बनी रहती है। इसका निराकरण समाधान समृद्धि पूर्वक जीने वाली परिवार व्यवस्था और समाधान समृद्धि अभय सम्पन्न अर्थात वर्तमान में विश्वास सम्पन्न अखण्ड समाज व्यवस्था और समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व पूर्वक जागृत परम्परा को प्रमाणित करने वाली व्यवस्था प्रमाणित होने पर ही संभव है। इन सभी तथ्यों को हृदयंगम करने के लिए सकारात्मक पक्ष में दृढ़ मानसिकता के रूप में जनचर्चा और संवाद एक आवश्यक कार्यक्रम है। यह सब जागृत परम्परा की महिमा है। जागृत परम्परा में हर मानव की

परस्परता न्याय और विश्वास सूत्र से जुड़ी रहती है। न्याय सूत्र का मतलब परस्पर सम्बंधो की पहचान, निर्वाह, उसकी निरन्तरता ही है। ऐसी निरन्तरता विश्वास नाम से ख्यात है। ऐसी स्थिति हर मानव के लिए शुभ, सुन्दर, समाधान के रूप में अनुभूति होना, अभिभूत होना, समाधान सम्पन्न होना समृद्धि का अनुभव होना एक स्वभाविक प्रक्रिया है। समृद्धि सहज अनुभूति परिवार में होना पाया गया है।

क्योंकि परिवार में सीमित संख्या में सदस्यों का होना और उन सबके शरीर पोषण संरक्षण और समाजगति के पक्ष में वस्तुओं की आवश्यकता निर्धारित होना पाया जाता है। ऐसे निश्चयन के आधार पर आवश्यकता से अधिक उत्पादन प्रवृति का होना तदानुसार फलपरिणाम होना पाया जाता है। इस विधि से अर्थात जागृतिपूर्ण परम्परा विधि से हर मानव परिवार समाधान समृद्धि को अनुभव करना सहज है। इसकी अपेक्षा सुदूर विगत से ही मानवाकांक्षा के रूप मे विद्यमान है ही और विद्यमान रहेगा ही। इस मुद्दे पर परामर्श संवाद हर मानव परिवार में और योग संयोग होने वाले छोटे बड़े समाजो में चर्चित होना निष्कर्षो का पाना मानव का ही कर्तव्य है। चर्चा की प्रवृति मानव में निहीत है ही। सारे मानव अपने में स्वस्थ सुन्दर समाधान समृद्धि का धारक वाहक होना चाहता ही है। समाधान सम्पन्न मानसिकता और रोग मुक्त शरीर होना और उसे बनाये रखना ही मानव में स्वस्थता का तात्पर्य है। इसमें शरीर में निरोगिता को स्वास्थ्य कहा जाता है। ऐसे निरोगिता की पहचान सप्त धातुओं के संतुलन में होना पाया जाता है।

स्वस्थता को जीवन अपनी जागृति को प्रमाणित करने योग्य शरीर के रूप मे पहचानने है। जागृति ही मन: स्वस्थता है। मनः स्वस्थ मानव स्वस्थ शरीर के माध्यम से प्रमाणित होना, स्पष्ट होना, प्रयोजनशील होना पाया जाता है। प्रयोजनशील होने का तात्पर्य परम्परा के रूप में प्रमाणित होने से है। प्रसादित होने का मतलब है समझा हुआ को समझाने से, सीखा हुआ को सिखाने से, किया हुआ को कराने से। जागृति अपने आप से लोक व्यापीकरण होना पाया जाता है। इसकी आवश्यकता पर ध्यान देने की आवश्यकता है। समझदारी अपने आप में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व को समझना ही है। प्रमाणित होना ही है।

दृष्टापद प्रतिष्ठा के रूप में जीवन में, से, के लिए जीवन ज्ञान सम्पन्न होना ही है। सहअस्तित्व दर्शनज्ञान का मतलब यही है। इसी के क्रियान्वयन विधि से अखंडता, सार्वभौमता का अनुभव होना समाधान है और समाधान का अनुभव होता है, यही सुख

है, यही मानव धर्म है। मानव धर्म विधि से जीता हुआ परिवार से विश्व परिवार तक जीवनाकांक्षा मानवाकांक्षा सहज रूप में ही सबके लिए सुलभ रहती है। इसी आशा में मानवकुल प्रतीक्षारत है तथा इसे सफल बनाना मानव का ही कर्तव्य दायित्व है। इस जिम्मेदारी को स्वीकार करने के लिए लक्ष्य सम्मत परिवार जनचर्चा हर मानव परिवारो में, समुदायो में, सभाओ में आवश्यक है। चर्चा अपने में लक्ष्य के लिए आवश्यकीय प्रक्रिया, प्रणाली और नीतिगत स्पष्टता के लिए होना सार्थक है। प्रक्रिया का तात्पर्य निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्वक किये जाने वाली कृतकारित अनुमोदित कार्यों से है।

ऐसे कार्य को हर व्यक्ति सम्पादित करने के प्रयास में प्राय: हर मानव में यह प्रवृति दृष्टव्य है। इस मुद्दे में ध्यान देने का तथ्य इतना ही है जागृति पूर्वक हम समाधान परम्परा को बना पाते है। भ्रम पूर्वक समस्याओं को तैयार कर देते है जैसे पहले कहे गये नौ प्रकार के अति क्लिष्ट समस्याएँ हैं। अतएव जनचर्चा और मानसिकता का इसमें प्रधान प्रावधान है।

मन के मुद्दे पर पहले ही स्पष्ट हो चुकी है कि जीवन शक्तियाँ अक्षय है न तो मन घटता है न बढ़ता है इसलिए इस का प्रमाण हर व्यक्ति है। प्रत्येक नर नारी में जितने भी आस्वादन, चयन होते हैं उसके उपरान्त में चयन आस्वादन की मानसिकता बनी रहती है। इसे हर मानव में सर्वेक्षण कर सकते है। हर मानव द्वारा इसे स्वीकारने में भी कोई कठिनाई नहीं है। प्रत्येक में निरीक्षण करना स्वाभाविक क्रिया है। मानव में मनोप्रवृतियों को कार्यरूप और फलस्वरुप में देखने का अरमान सदा-सदा से ही निहित है। निहित रहने का तात्पर्य हर मानव में प्रमाणित अथवा वर्तमानित रहने से है। इस ढंग से मानव अपने स्वस्थ कार्यकलाप स्वस्थ मानसपूर्वक ही सम्पादित कर पाता है। स्वस्थ मानस अनुभवमूलक मानसिकता है। अनुभव अपनी सम्पूर्णता में सहअस्तित्व ही है। इन तथ्यो पर चर्चा निष्कर्ष मानव कुल के लिए उपयोगी होना पाया जाता है।

नीति का तात्पर्य नियति विधि से अर्थात नियति क्रम, नियति लक्ष्य के सन्तुलित कार्यकलाप से है। प्रणाली का तात्पर्य सोपानित कार्यक्रमो को पहचानना, निर्वाह करना या दूसरी विधि से कड़ी से कड़ी जुड़ी हुई है। तीसरे विधि से लक्ष्य प्राप्ति के लिए किया गया सम्पूर्ण क्रियाकलाप मुख्य मुद्दा लक्ष्य प्रमाणित होने से है।

पद्धति का तात्पर्य किसी भी लक्ष्य के लिए जितने भी उपकरण साधन होते है, इन सबको सार्थकता के लिए सजा देने से जैसे मानव निपुणता पांडित्य स्वत्व है इसे पाना

लक्ष्य है । इसके लिए मन तो तत्पर होना आवश्यक है शरीर भी सँजोए रहने उतना ही आवश्यक है । यह सन्तुलित रहना पद्धति है ।

इसी प्रकार घर बनाना उसके लिए मिट्टी पत्थर जो कुछ भी द्रव्य है उनको विधिवत सजो देने से घर बनता ही है इसमें गलती होने से घर गिरता है । अस्तु हर लक्ष्य के लिए जितने भी साधन होते है उसको सार्थकता के अर्थ में सजाना है । इस विधि से स्पष्ट होता है हर लक्ष्य को पाने के क्रम में पद्धति, प्रणाली, नीति की आवश्यकता है ।

अध्याय - 6

व्यवहार - मानव परम्परा के साथ

व्यवहार - मानव परम्परा के साथ

एक से अधिक मानव की परस्परता में लक्ष्य सम्पन्न होने के अर्थ में किया गया सभी क्रिया, प्रक्रिया, वाद, संवाद ये सब व्यवहार नाम है। व्यवहार सदा-सदा से होता ही आया है। भले लक्ष्य ओझिल क्यो न हो। अभी तक मानव को अपनी परम्परा में लक्ष्य की अपेक्षा तो रही है। संज्ञाननीयता सहित प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धतियाँ सार्थक नहीं हो पाई। क्योकि अभी तक जितनी भी मानव परम्परा हुई है ये सब संवेदनशीलता की सीमा में दिखती है। जबकि मानव की आकाँक्षाये संज्ञानशीलता से ही निबद्ध हैं। निबद्ध रहने का तात्पर्य सहज विधि से सहअस्तित्व विधि से अनुबंधित है। जैसे सुख हर मानव चाहता है ऐसे सुख को संवेदनाओ में खोजता है यह कैसे पूरा हो जबकि यह संज्ञानशीलता का वैभव है। समाधान के अनुभव में सुख होना स्पष्ट हो चुका है। समाधान अपने स्वरूप में समझदारी की अभिव्यक्ति होना भी प्रतिपादित हो चुकी है। समझदारी का मूल वस्तु सहअस्तित्व दर्शनज्ञान, जीवन ज्ञान ही है। इस ढंग से संज्ञानशीलता के आधार पर समझना हम पहचान चुके है। इसलिए संज्ञानशीलता अपने में संवेदनाओं को पुष्ट करते हुए नियंत्रित रखना बन जाता है। इस विधि से यह सिद्धान्त स्पष्ट होता है कि संज्ञानशीलता पूर्वक ही संवेदनाएँ नियंत्रित होती है। संज्ञानशीलता पूर्वक संवेदनाएँ नियंत्रित रहती है इस तथ्य की पुष्टि सम्बंधो को पहचानने, निर्वाह करने के रूप में पहचानते हैं। परस्पर मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति के रूप में पहचानते हैं। सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति पूर्वक संवेदनाओ में नियंत्रण पाते है। फलस्वरूप स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार पूर्वक नियंत्रण को पहचानते हैं। तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा पूर्वक संवेदनशीलता के नियंत्रण को पहचानते हैं। समाधान, समृद्धिपूर्वक जीने के क्रम में नियंत्रण समझ में आता है। वर्तमान में विश्वास, सहअस्तित्व प्रमाण विधि से संवेदनाएँ नियंत्रित होना पायी जाती है। अखंड समाज विधि से संवेदनाएँ नियंत्रित होना पायी जाती है। सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करने के रूप में संवेदनाओं का नियंत्रित होना पाया जाता है। परिवार व्यवस्था मे भागीदारी करते हुए संवेदनाओं का नियमित होना पाते है। इस विधि से जागृत परम्परा को प्रमाणित करना बन जाता है अतएव सार्थक संवाद इन मुद्दो पर आवश्यक है ही।

व्यवहार मानव की स्वयं स्फूर्त प्रवृति है। जीव संसार की प्रवृति कार्य है। सभी जीव वंशानुषंगी विधि से कार्य प्रवृति में है। इसे हर व्यक्ति परीक्षण कर सकता है। क्योंकि

गाय की संतान गाय जैसे कार्यो में प्रवृत रहती है । इसकी संवेदनशीलता सीमा है । संवेदनशीलता पूर्वक ही जीव संसार का वैभव निश्चित होता है । वैभव निश्चित होने का तात्पर्य आचरण निश्चित होने से है ।

हर जीवों की संवेदनशील प्रक्रियाएँ निश्चित रहना ही आचरण का निश्चय है । सुनिश्चित आचरण के आधार पर ही हर मानव समस्त प्रकार के जीवो को पहचानता है । फलस्वरूप आवश्यकता अनुसार कुछ जीवों को नियंत्रित करता अर्थात पालता और उपयोग करता है । यह सर्वविदित तथ्य है । इसका तात्पर्य यह हुआ जीव संसार संवेदनशीलता की निर्वाह विधि से प्रमाणित आचरण का स्वभाव नाम है । इसी क्रम में जीव संसार का मूल्यांकन स्वभाव के अनुसार और हर जीवो को जीने की आशा सहित होना पाया जाता है । इसलिए जीव संसार आशाधर्मी होना पाया गया है । वनस्पति संसार बीज वृक्षानुषंगी अर्थात बीज से वृक्ष, वृक्ष से बीज होना सर्वविदित है । वनस्पतियो की पहचान गुणो के आधार पर विदित है । वनस्पतियों में सारक-मारक गुण होना पाया जाता है । सारक गुण का तात्पर्य जीव संसार के लिए अनुकूल होना चाहिये । मारक का तात्पर्य प्रतिकूल होने से है ।

वनस्पति संसार बीज गुणानुषंगी पहचान है । इसका आचरण गुणों को प्रमाणित करने के अर्थ में निश्चित होना पाया जाता है । इस प्रकार नीम, तुलसी, आम, दूब, बेल, मलाति आदि सभी वनस्पतियों को पहचानना मानव में, से, के लिए अति सुलभ हो गया है । इस क्रम से मानव द्वारा वनस्पतियो को पहचानने का आधार बीज गुणानुषंगी होना पाया गया है । इस विधि से वनस्पति संसार को पुष्टि धर्म के साथ पहचाना गया है । वनस्पति किसी न किसी पुष्टि प्रदान करता ही है । स्वयं में भी पुष्टि संग्रहण करता है । वनस्पति संसार अमूल्य वस्तु है । वनस्पति संसार मानव शरीर संचालन के लिए अति आवश्यक है । वायु को तैयार करने में समर्थ है इसी क्रियाकलाप को प्राणवायु की सृजनशीलता अथवा अपान वायु को प्राण वायु में परिवर्तित करने का कार्य वनस्पति संसार में ही होता है । इसका मूल्यांकन अथवा इस पर ध्यान देना मानव कुल के लिए अतिआवश्यक मुद्दा है ।

प्रदूषण से प्राण वायु का शोषण बढ़ता जा रहा है । और प्राण वायु की सृजनशीलता घटती जा रही है । इससे मानव कितने खतरे में आ रहा है इसे समझना आवश्यक है । यदि प्राण वायु इतना घट जाये, हमारे श्वॉस में प्राण वायु आवश्यकता से कम हो जाये तो क्या स्थिति रहेगी । मानव शरीर में प्राण वायु का सेवन होता है । अपान

वायु का विसर्जन होता है। वनस्पति संसार में अपानवायु का सेवन होता है प्राणवायु का विसर्जन होता है। इस ढंग से प्राणावस्था, जीव और मानव शरीर के लिए पूरक होना और जीव एवं मानव वनस्पति संसार के लिए पूरक होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव अपनी स्वस्थ मानसिकता के साथ परिशीलन करने पर पता चलता है कि इसके संतुलन को बनाए रखना अतिआवश्यक है। सन्तुलन बनाए रखने का दायित्व मानव के माथे पर टिकता है। इस दायित्व को स्वीकारने के उपरान्त ही उपर कही गयी दुर्घटनाओं का उन्मूलन होगा।

जागृति में संक्रमित होने के उपरान्त मानव में मानवीय व्यवस्था उदय होना पाया जाता है। उसके पहले जागृति क्रम में रहते हुए अमानवीय विधि से अर्थात जीवो के सदृश्य रहते है। अव्यवस्था के चपेट में आ जाते है। यही समस्या से घिर जाने का तात्पर्य है। जागृति के अनन्तर ही मानव और मानवीयता की अविभाज्य वर्तमानता तथा शरीर और जीवन के संयुक्त प्रकाशन में मानव परम्परा होने अर्थात विवेक और विज्ञान सम्पन्न हो पाते हैं। हर मानव जागृत होने योग्य है प्रकारान्तर से हर मानव जागृति को ही सम्मान कर पाता है। इसके मूल में मानव की परिभाषा ही मुख्य बिन्दु है। सन् 2000 के पहले दशक में यह सौभाग्य समीचीन है कि मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के नजरिये में हर समस्या का समाधान पाना संभव हो गया है। लोक-व्यापीकरण होने की अपेक्षा में व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है।

जागृत मानव परम्परा में मानवीय शिक्षा-संस्कार को पहचान लेना स्वाभाविक है। जिसमें सहअस्तित्व वादी विधि से सम्पूर्ण ताना बाना होना पाया जाता है। इसमें मानव अपने मानवत्व को पहचानना सहज हो जाता है मुख्य मुद्दा यही है। मानवत्व का पहला सूत्र मानवीयता पूर्ण आचरण सहित परिवार में व्यवस्था का प्रमाण और समग्र व्यवस्था में भागीदारी। इस व्याख्या के समर्थन में भौतिक, रासायनिक और जीवन क्रियाओं को, उन-उन में त्व सहित व्यवस्था सहित पहचानने, जानने, मानने की विधि से लोकव्यापीकरण योग्य होना पाया जाता है। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन सर्वाधिक होना चाहिए जबकि अभी तक शिक्षा का आधार और स्वरूप भौतिकवाद और आदर्शवाद के आधार पर रहा।

भ्रम विधि से श्रृंगारिता पहचानने का कार्यक्रम बना पराक्रम को पहचानने की विधि बनी और उपकार को भी पहचानने का प्रयास जारी रहा। सुविधा संग्रह का स्रोत व्यापार हुआ। नौकरी भी व्यापार का ही निश्चित ढाँचा-खाँचा है। सौंदर्य को संवेदनशीलता पर और संवेदनशीलता को वस्तु और आकार प्रकार पर निर्भर होना पाया जाता है।

संवेदना से कामोन्माद भोगोन्माद ही सर्वाधिक प्रभावशाली रहा। भोगोन्माद के क्रम में कामोन्माद सर्वाधिक प्रभावशील होना देखा गया। इस 2000 के शतक में पहले दशक तक मानव भोगोन्माद में चूर होना पाया गया। अपने जीवन सहज कामनाओ के आधार पर शुभ वार्ताओ में भागीदारी भी करता रहा। इस विधि से सभ्रान्त कहलाने वाले अपनी सज्जनता के लिए अपने को प्रस्तुत करते हुए उपकार विधि को पहचानने की कोशिश हुई।

पराक्रम को पहचानने के लिए गये इसका परिचय भोगशक्ति और युद्धशक्ति के रूप मे हुआ। युद्ध शक्ति बर्बादी के लिए होना सर्वविदित है। भोगशक्ति व्यक्तिवादी होना पाया जाता है। भोगशक्ति के प्रयोग में ही सौंदर्य बोध की आवश्यकता बनी रहती है। इस विधि से सभी मानव अथवा सर्वाधिक मानव संवेदनशीलता की इस पराकाष्ठा तक पहुंचने के इच्छुक है। इसी लक्ष्य में विज्ञान शिक्षा संसार को स्वीकार हुआ है। क्योकि प्रौद्योगिकी को विज्ञान का उपज माना जाता है। प्रौद्योगिकी विधि से कम श्रम से ज्यादा उत्पादन होने की स्वीकृतियाँ बनी है। इसी कारण विज्ञान शिक्षा का लोकव्यापीकरण सुगम हुआ। विज्ञान विधा में और तकनीकी कर्माभ्यास में जिस ज्ञान के आधार पर मानव को जीना है वह ज्ञान मानव को पहचानने में पर्याप्त नहीं हो पाया। इसी प्रकार आदर्शवादी ज्ञान में मानव को पहचानना संभव नहीं हो पाया। आदर्शवादी विधि में दया के आधार पर कुछ उपदेश सद्वाक्य प्रस्तुत हुए है। लेकिन इसकी मूलशिक्षा भक्ति विरक्ति के अर्थ में प्रतिपादित हो चुकी है। उल्लेखनीय तथ्य यही है कि भक्ति- विरक्ति भी व्यक्तिवादी है। व्यक्तिवाद किसी शुभ स्थली पर पहुँचने में समर्थ नहीं हुआ सर्वशुभ तो बहुत दूर है। इसलिए मानवीय शिक्षा को पहचानना एक आवश्यकता बन चुकी है।

मानवीय शिक्षा का प्रारूप :

मानवीय शिक्षा प्रारूप के अनुसार मानव को मानवीयता के संयुक्त रूप में पहचानने की आवश्यकता है। जनाकांक्षा मानवीय शिक्षा का स्वागत करता है। जनचर्चा में इसे हृदयंगम करने और इसकी परिपूर्णता को साक्षात्कार करने की आवश्यकता है। परिपूर्णता का तात्पर्य समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी सहित परिवार और विश्व परिवार व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करने के अर्थ मे है।

शिक्षा की पहचान हर मानव के लिए आवश्यक है। हर देश काल में आवश्यक है। हर स्थिति परिस्थिति में आवश्यक है। इस आधार पर शिक्षा प्रारूप को जाँचने की आवश्यकता है। जांचने के उपरान्त स्वीकारने में सटीकता बन पाती है। इसे हर व्यक्ति

परीक्षण, निरीक्षण कर सकता है। हर मानव में संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का प्रमाण प्रस्तुत होना आवश्यकता है क्योंकि संज्ञानशीलता पूर्वक ही व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी हो पाती है। ऐसी स्थिति में मानव का आचरण निश्चित, नियंत्रित हो पाता है। निश्चित होने के आधार पर सम्पूर्ण आचरण समाधान सम्पन्न रहना पाया जाता है। समाधान पूर्ण विधि से आचरण करने के क्रम में संवेदनाएँ नियंत्रित रहना देखा गया है। संवेदनाएँ नियंत्रित होना परस्परता में विश्वास का महत्वपूर्ण आधार है।

सम्पूर्ण मानव शिक्षा-संस्कार पूर्वक ही अपनी दिशा, उद्देश्य और कर्तव्यों को निर्धारित कर पाता है। मानव की दिशा लक्ष्य निर्धारित हो पाना जागृति का प्रथम सोपान है। इसके आगे अपने आप में कार्यक्रम और कार्यव्यवहार सम्पादित होना स्वाभाविक है। जिसके फलन में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणित होना है जिसके लिए हर मानव नित्य प्रतीक्षा में है और उपलब्धि ही गम्यस्थली है। उसकी निरन्तरता ही परम्परा है। ऐसी लक्ष्य संगत परम्परा ही जागृत परम्परा है। इसी क्रम में संज्ञानशीलता प्रमाणित होना, संवेदनाएँ नियंत्रित होना पाया जाता है। संवेदनाओ के नियंत्रण को अपने आप में मर्यादा के सम्मान के रूप में पहचाना गया है। मर्यादाएँ परस्परता में अति आवश्यक स्वीकृतियाँ है। इन स्वीकृतियों के आधार पर किये जाने वाली कृतियाँ अर्थात कार्य और व्यवहार से मानव परम्परा में हर मानव सुखी होना स्वाभाविक है।

मानव में परस्परताएँ में भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, माता-पिता, पति-पत्नि, चाचा-चाची, मामा-मामी आदि से सम्बोधन किये जाते है। ये परिवार सम्बोधन कहलाते है। इन सम्बोधन के साथ प्रयोजनो को (सम्बंध का अर्थ रूपी प्रयोजनो को) पहचानते हुए निर्वाह करने के क्रम में हम जागृत मानव कहलाते है। भ्रमित मानव भी सम्बोधनो को प्रयोग करता ही है। सम्पूर्ण प्रयोजन सम्बन्धो की पहचान और निर्वाह जैसे गुरू के साथ श्रद्धा-विश्वास, माता-पिता के साथ श्रद्धा-विश्वास, भाई-बहन के साथ स्नेह और विश्वास, मित्र के साथ स्नेह-विश्वास, पुत्र पुत्री के साथ वात्सल्य, ममता, विश्वास, इसकी निरन्तरता में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करते है। इन सभी सम्बंधो का निर्वाह करने के साथ दायित्व और कर्तव्य अपने आप स्वीकृत होते है।

दायित्व कर्तव्यों का निर्वाह होना अपने आप में विश्वास का आधार बनता है यही व्यवहार सूत्र कहलाता है। जहाँ भी कर्तव्य दायित्वो का निर्वाह नहीं कर पाते वहाँ विश्वास नहीं हो पाता है। भ्रमित मानव परम्परा में दायित्व कर्तव्य का बोध नहीं हो पाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है व्यवहार तंत्र का आधार सम्बंध ही है। इसका निर्वाह और

निरंतरता ही परिवार और समाज की व्याख्या बन जाती है। इन दोनो प्रकार की व्याख्या से पारंगत होने के फलन में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी होना स्वाभाविक है। व्यवस्था में सार्वभौमता स्वभाविक है। व्यवस्था को हर व्यक्ति बरता ही है अखण्ड समाज व्यवस्था ही व्यवस्था हो पाती है।

व्यवहार व्यवस्था का तात्पर्य अथवा समाज व्यवस्था का तात्पर्य मानव में, से, के लिए लक्ष्य समेत जीने की विधि, विधान, कार्य और व्यवहार ही है। व्यवहार विधि संबंधो के आधार पर मूल्यों के निर्वाह करने के दायित्व पर निर्भर किया जाता है। इसके लिए जो क्रमबद्धता अर्थात निर्वाह के लिए जो क्रम बद्धता होती है यही विधान है। इन विधि विधान के आधार पर सर्वप्रथम स्वस्थ मानसिकता की पहचान, निर्वाह, मूल्यांकन विश्वास का मूल आधार होता है। स्वस्थ मानसिकता जागृत मानसिकता होती है। जागृत मानसिकता अनुभवमूलक मानसिकता है। जागृतिपूर्ण मानसिकता अपने में मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता को प्रमाणित करने के क्रम में उद्धत रहती ही है। मानवीयता, देव मानवीयता, में परिवार और समाज व्यवस्था मानवीयता पूर्ण आचरण सहित प्रमाणित होना बनता है। इसी क्रम में दिव्य मानवीयता समग्र व्यवस्था में भागीदारी पूर्वक स्वतंत्रता, स्वराज्य को प्रमाणित करने में सार्थक हो जाती है। स्वतंत्रता, स्वराज्य सहअत्तित्व विधि से वैभवित होते है। स्वराज्य व्यवस्था में स्वाभाविक विधि से मानवीय शिक्षा-संस्कार, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, स्वास्थ्य-संयम कार्य और व्यवस्था अपने आप में निर्वाह होते है। ऐसे स्वराज्य व्यवस्था परिवार मूलक विधि से विश्व परिवार व्यवस्था तक दश सोपानीय विधि से सार्थक हो जाते है। हर स्थितियों मे सामान्य रूप मे 10-10 समझदार व्यक्तियों की एक सभा सम्पन्न होती है । एक परिवार में 10 समझदार व्यक्तियों होते हैं। ऐसे 10 व्यक्तियों में से एक व्यक्ति परिवार व्यवस्था के अतिरिक्त और सोपानीय व्यवस्था में भागीदारी के लिए निर्वाचित रूप में प्रस्तुत होना बनता है। ऐसे व्यक्ति को हर परिवार में पहचान लेना एक स्वाभाविक प्रक्रिया रहता ही है।

जागृत मानव परिवार मे परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने के आधार पर उपकार कार्य में प्रवृत होना स्वाभाविक है। समाधान समद्धि के साथ परिवार में उपकार प्रवृति, ऐसे उपकार प्रवृति की परिवार समूह, ग्राम, ग्राम समूह, क्षेत्र, मंडल, मंडल समूह, मुख्य राज्य, प्रधान राज्य, विश्व परिवार राज्य सभा में भागीदार के लिए प्रस्तुत होना होता है। यही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप है। इस क्रम में हर परिवार अपने में

से एक व्यक्ति को समग्र व्यवस्था में भागीदारी जैसे पावन और उपकारी कार्य के लिए अर्पित करना एक अनुपम स्वरूप है। ऐसे ही हर व्यक्ति और परिवार में मर्यादा सम्पन्न मानवीयता पूर्ण आचरण के साथ सहज रूप में तृप्त होना स्वाभाविक है। इस मुद्दे पर जनचर्चा की आवश्यकता है यह अति आवश्यक है। यह मुद्दा सार्थक है कि नहीं, इसे भी परामर्श करना आवश्यक है।

सुदूर विगत से राज्य और धर्म गद्दी का प्रचलन रहो है। लोक मानसिकता भी भय और प्रलोभन के आधार पर इनका सम्मान करते रहे है। राज्य शासन में भी भय और प्रलोभन और धर्मशासन में भी भय प्रलोभन बना रहा। इससे छुटने का कोई रास्ता ही नहीं रहा। कुछ समय के उपरान्त संयोग हुआ सर्वाधिक राज्य गद्दी, राज्य शासन से गणतंत्र शासन में परिवर्तित हो गई। इस परिवर्तन में, इस गणतंत्र शासन में जनप्रतिनिधि गद्दी परस्त होने की विधा रही। यह व्यवस्था भी शक्ति केन्द्रित शासन संविधान व्यवस्था कहलायी। ऐसे संविधान के तले जन प्रतिनिधि प्रचलित ज्ञान विवेक को लेकर आसीन होता हुआ देखा गया। ऐसे जन प्रतिनिधि देश की सीमा सुरक्षा ध्यान में रखते हुए देश वासियो को शान्ति पूर्वक रहने का प्रबंधन करने का आश्वासन देते रहे है। ऐसे क्रम में प्रधान गद्दी बैठा व्यक्ति जन अपेक्षाओ उस में से कुछ पूरा कर पाना कुछ नहीं कर पाना होता है। मुख्य मुद्दा यही है सबके लिये संतुष्टि कैसे मिले ? करीब करीब सभी राज्य ऐसी जगह में पहुंच गये है। जनमानस की संतुष्टि केवल पैसे से है पैसे को कैसे सबको उपलब्ध कराया जाय, सोचने जाते है, सोचने के लिए परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण करते भी है। यह भी देखने को मिला एक दूसरे को कलंकित करना नेतागिरी का प्रमुख कार्य माना गया। इस झांसा पट्टी में लोक कल्याण, जन कल्याण, जन समुदाय कार्य सब छिन्न-भिन्न एवं दिशा विहिन रहे आया हुआ पाया गया।

कमोवेश ऐसी घटनाये सभी देशो में होती गयी। इसके बावजूद भी पुन: लोकमानस के लिये अथवा लोकमानस को रिझाने के लिये, पद पैसे से रिझान की प्रक्रिया अपनाते बारम्बार कलंकित होते रहे। इसके मूल कारण को परिशीलन करने से पता लगा की निर्वाचन कार्य में मत संग्रह के लिए अपार धन का नियोजन, स्वयं में नोट और वोट का गठबंधन प्रमाणित हुआ। फलस्वरूप पद का बंटवारा पैसे का बंटवारा शुरू हुआ। उसमें सन्तुष्टि असंतुष्टि अपने आप में उभर आया। सन्तुष्ट और असंतुष्ट दोनो अपने तौर तरीके से पेश आते आये। उक्त दोनो उपक्रम अभी तक देश और धरती के उपकार में नहीं लग पाया। ये सब अन्ततोगत्वा उसी बटवारे के चक्कर मे फँसते ही आए। राज्य पुरूषों का

उद्‌गार सुनने मे आता है 15- 20 प्रतिशत सरकारी धन ही सार्थक रूप में लग पाता है। बाकी सब बीच में दल-दल में फँस जाता है। ये सब सुनने-देखने के बाद समझ मे आता है इससे मुक्ति पाना जरूरी है यह भ्रष्टाचार का पहला चक्कर है। दूसरा चक्कर अनुदान है। अनुदान का मतलब देने के बाद लेना नहीं। एक बार दो बार अनुदान पाने के बाद प्रकारान्तर से और पाने की मानसिकता बनी ही रहती है। अनुदान पाने वाला व्यक्ति अनुदान पाते रहना ही अपना हक समझता है। जबकि यह प्रक्रिया निरंतर नहीं हो सकती। वह सफल न होने की स्थिति मे असंतुष्ट होना स्वाभाविक है। इस ढंग से असंतुष्ट होने का तरीका ही हो गया। तीसरा चक्कर आरक्षण है आरक्षण जाति विशेष पर आधारित होने पर वह आरक्षण प्रतिभा संकट का कारण हो गई। प्रतिभा संकट का तात्पर्य जो प्रतिभाएं जिनके लिए योग्य होती है उसे नकारने से, उपेक्षा करने से, उनकी प्रतिभा देश, राष्ट्र, राज्य के हित में नियोजित नहीं कर सके। उसे हित कार्य के लिए नियोजित नहीं करने से वह सार्थक हो नहीं पाया। इन दोनो प्रकार से इंगित क्षतियो को संकट का नाम दिया। इसमें होना क्या चाहिए इस मुद्‌दे पर सार्थक संवाद होना चाहिए। होने के लिए सहअस्तित्ववादी विधि से यही सूझता है कि हर व्यक्ति को, हर सामुदायिक व्यक्ति को समझदारी से सम्पन्न किया जाए हर समझदार व्यक्ति विधिवत अपनी प्रतिभा को व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में प्रायोजित करना बनता ही है। इस विधि से आरक्षण और अनुदान निष्पन्न जितनी भी गन्दगी है, मिटाने का दिन आ सकता है। इस पर ज्ञान चर्चा की आवश्यकता है ही।

अभी तक राजनेताओ को सर्वाधिक अभिनय कार्य के रूप में होना पाया गया। इसलिए पहले से कलात्मक अभिनय करने वाली प्रतिभाएँ, राजनेता होने के लिए उम्मीदवार हुए। ऐसे उम्मीदवारो में कुछ सफल भी हुए कुछ सफल नहीं हुए। जो अभिनय कार्यो में नहीं लगे है ऐसे व्यक्ति भी कुछ सफल हुए कुछ सफल नहीं हुए।

समुदाय विधि से भी नेतागिरी का आह्‌वान जन मानस से उभरी जैसे पिछड़े हुए समुदाय, कमजोर समुदाय, अल्प संख्यक समुदाय, महिला समुदाय आदि नामो से पहचाना गया। यह भी सब इनमें से जन प्रतिनिधि होने और कोई न कोई पद पर आसीन होने का प्रयत्न किये कुछ लोग सफल हुए कुछ लोग सफल नहीं हुए। अन्ततोगत्वा इन सभी प्रकार से पहुँचे हुए जनप्रतिनिधियो का रवैया केवल अभिनय ही रहा। इस मुद्‌दे पर आगे सोचने से पता लगता है कि जनप्रतिनिधियों का लक्ष्य अन्ततोगत्वा जन सम्पदा से अपना खाना-पीना ऐशो आराम, संग्रह सुविधा प्राप्त करना ही है। इस मुद्‌दे पर सोचने की

आवश्यकता है। क्या जनप्रतिनिधि अपने परिवार के बलबूते पर जी कर उपकार रूप में जनप्रतिधित्व करना है या प्रतिफल अपेक्षा करना है।

प्रतिफल अपेक्षा से जो जन प्रतिनिधि काम किये, समाज विरोधी नियति विरोधी, वन-खनिज विरोधी कार्यो को सर्वाधिक किया। इस बीच अपनी व्यक्तिगत सम्पदा को बढ़ाते रहे। अब ऐसी प्रतिफल अपेक्षा से नेतागिरी करता हुआ से क्या अपेक्षा किया जाये। इस पर भी मन लगा कर संवाद होना चाहिये।

जन प्रतिनिधि संविधान की रक्षा करेगे ऐसी मान्यता है अभी जितनी भी कथाएँ सुनने में आई है उनमें जनप्रतिनिधि स्वयं संविधान विरोधी होने के कारण दंडित होने की नौबत आती रही। क्या ये सब सच है ? यदि सच है तो और क्या किया जाये, कैसे किया जाये जो प्रतिफल अपेक्षा से कार्य करते हैं।

अभी कुछ राज्यों में ग्राम पंचायतों का बोलबाला है। ग्राम पंचायत अपने में ग्राम स्वराज्य के रूप में कार्य करने की परिकल्पना है। ऐसे ग्राम स्वराज्य में सभी को समान न्याय मिल सकता है ऐसा भी सोचा जाता है। सैकड़ो ग्राम पंचायतो के सरपंच जेल में पहुँच गये, हजारो के साथ मुकदमे चल रहे है। क्या ये घटनाएँ सच है ? यदि सच है तो जनप्रतिनिधियों से अब और क्या अपेक्षा किया जाये। इस पर सूक्ष्मता से सोचने, निर्णय लेने की आवश्यकता है। लोकमानस यदि समझदारी के साथ जीना बन जाता है तो ग्राम पंचायते सफल हो सकती है। इस तर्क पर भी परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था होना चाहिये न कि सरकार शासन। इस पर अपने को जन चर्चा में ध्यान देने की आवश्यकता है।

यह भी चर्चा का मुद्‌दा है कि हम शासन में जीना चाहते है या व्यवस्था मे। यदि शासन चाहते हो तब अभी हो रहे भ्रष्टाचार, दूराचार, अनाचार उसी प्रकार होते रहेंगे। यदि जन मानस इसे नहीं चाहता तो परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को अपनाना होगा। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था अपने आप में समझदारी सम्पन्न अनेक परिवारो की संयुक्त व्यवस्था है। प्रत्येक परिवार में उपकार प्रवृति होने के आधार पर स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार स्वयं स्फूर्त होता है। इसमें जनप्रतिनिधि किसी भी प्रकार से धन व्यय के बिना उपलब्ध होना एक महिमा सम्पन्न घटना है जिसकी आवश्यकता है। इस प्रकार 10 प्रतिशत व्यक्ति हर गांव, मुहल्ले, देश में सम्पूर्ण धरती में उपलब्ध होना समीचीन है। इस मुद्‌दे पर परामर्श कार्य, संवाद सघन रूप में होना चाहिए। इसके लिए हर मानव को समझदार होना आवश्यक है। हर नर-नारी समझदार होना भी चाहते है। समझदारी के लिए वस्तु लोक सम्मुख प्रस्तुत हो चुकी है यही मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद है। इसके

आधार पर मानवीय शिक्षा-संस्कार का प्रारूप लोकमानस के लिए अर्पित हुआ है। ये सभी विधा को जन चर्चा मे लाकर निष्कर्ष निकालना और स्वयं स्फूर्त विधि से अपनाना सारी दरिद्रता से छुटकारा है।

दरिद्रता का तात्पर्य बौद्धिक रूप में समझदारी में विपन्नता, भौतिक समृद्धि होने में विपन्नता, समाधानित होने में विपन्नता, वर्तमान में विश्वास (अभयता) में विपन्नता, सहअस्तित्व में विपन्नता, व्यवस्था में भागीदारी करने में विपन्नता, उत्पादन कार्य करने में विपन्नता, न्याय-सुरक्षा में विपन्नता, स्वास्थ्य-संयम में विपन्नता, उपकार कार्यो में विपन्नता ये सभी विपन्नताएँ मानव को दरिद्र बनाने में समर्थ है। इन सभी प्रकार की विपन्नताओं से मुक्ति समझदारी से ही है।

विपन्नताएँ दरिद्रता का द्योतक है। हर मानव समझदारी पूर्वक ही इन सभी विपन्नताओ से मुक्त होता है। सम्पूर्ण क्लेश दुःख से मुक्त होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं मानव भ्रमवश जितने भी प्रकार से गलती अपराध करता है इन सबका निराकरण समझदारी से होता है। अतएव समझदारी हर मानव के स्वर्णिम भविष्य का, सफल भविष्य एवं सफल वर्तमान का स्रोत है। इस पर जनविचार आवश्यक है। सम्पन्नता हर व्यक्ति चाहता है हर नर-नारी चाहता है। सम्पन्नता का पहला वैभव जागृति है, दूसरा सर्वोतोमुखी समाधान है, तीसरा न्याय पूर्वक जीना, चौथा उपकार कार्य में निष्ठा रखना, पाँचवा समृद्धि को प्रमाणित करना, छठवाँ व्यवस्था में जीना, सातवाँ समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना, आठवाँ सहअस्तित्व को प्रमाणित करना, नौवा सहअस्तित्व को अपने में स्थिर होने के रूप में स्पष्ट करना अनुभव करना, दसवां सहअस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण व्यवस्था में निहित कार्यकलापो को स्पष्ट करना, ग्यारहवाँ देव मानव दिव्य मानव होना, स्वयं को प्रमाणित करना, बारहवाँ स्वराज्य स्वतंत्रता को प्रमाणित करना, ये सब नित्य वैभव के मुद्दे है। यह सब जागृति का ही वैभव है। इन सब वैभव के प्रति जनमानस की स्वीकृति के लिए जनचर्चा संवाद होना आवश्यक है। जनमानस अपने में शुभ चाहता ही है। सुख को सम्पूर्ण बारह बिन्दुओं मे इंगित कराया है। इसकी आवश्यकता पर जनचर्चा पूर्वक जिज्ञासा को निर्मित करने की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति होने में उक्त सभी बिन्दुओं का स्पष्ट अध्ययन के रूप मे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत है।

हर मानव अपने वैभव को पहचान कराना चाहता ही है। इस क्रम में स्वयं वैभवशाली होना आवश्यक है। विपन्नता से सम्पन्नता की ओर मानव प्रवृति की आवश्यकता है। सम्पन्नता को भ्रमवश सुविधा संग्रह मान चुके है जबकि जीवन जागृति

सर्वोपरी सम्पन्नता है । जागृति के उपरान्त ही हर मानव क्लेश, दु:ख, विपन्नता भ्रम से मुक्त हो सकता है इसे हम भले प्रकार से जीकर देखे है । हर व्यक्ति सम्पन्नता पूर्वक जीना चाहता है इसका मूल वैभव केवल समझदारी ही है । समझदारी का अर्थ पहले से इंगित हो चुकी है । इस मुद्दे पर जनचर्चा और स्वीकृति और जिज्ञासा की आवश्यकता है ।

हर मानव में जागृतिपूर्वक अभिव्यक्त होना एक अभिलाषा के रूप में विद्यमान है ही । जागृत होने की स्वीकृति हर मानव में है ही । जागृति के उपरान्त सर्वोतोमुखी समाधान होना स्वभाविक है । हर नर-नारी में अविभाज्य रूप में विद्यमान, रूप, बल, धन, पद, और बुद्धि का होना पाया जाता है । बुद्धि अपने में अनुभवमूलक होने के आधार पर जागृति का प्रमाण होना संभव हो जाता है ऐसी स्थिति में मानव का सुखी होना स्वभाविक है । इसे इस प्रकार से देखा गया है मानव स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में आचरण करने के फलस्वरूप सुखी होता हुआ स्पष्ट होता है । बल के साथ सुखी होने की विधि को दयापूर्वक व्यवहार करने की स्थिति मे स्पष्ट होता है । धन को उदारता पूर्वक सदुपयोग करने की स्थिति में धन से मिलने वाला सुख उपलब्ध होता है, पद का सुख न्याय पूर्वक जीने से अर्थात सम्बंधो की पहचान, मूल्यो का निर्वाह, मूल्यांकन, उभय तृप्ति के रूप में प्रमाणित होता है । बौद्धिक सुख, सत्यबोध का सुख विवेक और विज्ञान पूर्वक लक्ष्य और दिशा को निर्धारित करने के रूप में सुखी होता है । इसे भले प्रकार से निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक जीकर देखा है । इस पर जनचर्चा, परामर्श करना स्वीकार करना एक आवश्यकता है ।

हर जागृत मानव स्वयं के वैभव को सम्पन्नता के रूप में प्रस्तुत करते हुए समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में राष्ट्रीय चरित्र को प्रमाणित करता है । इस क्रम में राष्ट्रीय चरित्र का एक प्रारूप अध्ययन के लिए प्रस्तुत है इस पर जनचर्चा अवश्यंभावी है ।

राष्ट्रीय चरित्र का प्रारूप :

राष्ट्रीयता अपने में मानवीयता पूर्ण मानव का वैभव ही है । मानवीयता पूर्ण मानव के मानवाकाँक्षा जीवनाकाँक्षा सहज सार्थकता को प्रमाणित करने का मानसिकता सहित समझदारी पूर्वक जीने के रूप में राष्ट्रीयता प्रमाणित होती है । प्रमाणित होने के क्रम में ही स्वतंत्रता और स्वराज्य स्पष्ट हो जाता है । स्वराज्य का तात्पर्य ''स्व का वैभव'' अर्थात हर मानव अपने वैभव की अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा, प्रकाशन सहित पहचान कराना-करना और उसका सदा मूल्यांकन करते रहना ही स्वयं के वैभव का अर्थ है । स्व-वैभव ही हर मानव का ''स्वत्व'' है । इसे ''त्व'' के नाम से इंगित कराया गया है । इस विधि से

मानवत्व ही सर्व मानव वैभव का राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता स्वराज्य का ही प्रमाण है। यह राष्ट्रीयता के लिए आवश्यकीय ज्ञान विज्ञान सहअस्तित्ववादी विधि से करतलगत होता है। करतलगत का मतलब है मानव के स्वत्व में समा जाता है। सहअस्तित्व वादी विधि से हम मानव केसमझदार होने की आवश्यकता इसलिए भी है कि मानव को मानव के रूप में पहचानना है एवं निर्वाह करना है एवं मानव और मानवेत्तर प्रकृति के साथ, वन खनिज के साथ संतुलन को बनाये रखना है। जिससे ऋतु संतुलन बनता है। इन दोनों आशयों के लिए सहअस्तित्ववादी विधि, सार्थक मानसिकता समझ, विज्ञान और ज्ञान सम्मत विवेक सम्पन्न होने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीयता के स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए केवल मानव रूपी इकाई ही इस धरती पर पहचान में आई है। इस बीसवीं शताब्दी के समाप्त होते तक मानव परम्परा अनेक समुदाय अनेक राज्य अनेक राष्ट्र के रूप मे दृष्टव्य हैं। जो समुदाय जिस देश या भूभाग में रहता है उसका अथवा उस सीमागत भूखंड को राष्ट्र/राज्य मान लेते है। इसी का नाम सीमा है। उसकी सुरक्षा की परिकल्पना हर समुदाय कर चुका है इसी के साथ उसी सीमा क्षेत्र में रहने वाले राष्ट्रीयता के समर्थक रहे है अर्थात सीमा सुरक्षा के समर्थक रहे है। इसी के साथ उस क्षेत्र में रहने वाले सब व्यक्ति निश्चित संस्कृति सभ्यता के प्रति निष्ठा रखने वाले होगें। हर राज्य राष्ट्र के सभी ओर पड़ोसी देश, राज्य या राष्ट्र होना स्वभाविक है। अभी तक यही मान्यता है हमारे देश की अथवा राज्य राष्ट्र की सीमा के अतिरिक्त स्थली को अन्य मानना बना ही रहता है, यह ही सभी प्रकार के संकट का प्रधान कारण है। इसी कारण सदा सदा द्रोह विद्रोह शोषण होते ही आया। इन उपद्रवो से मानव तो त्रस्त रहा ही है। अब धरती त्रस्त होने की स्थिति आने से इसका समाधान आवश्यक है अथवा समाधान की अपेक्षा बलवती हुई। उक्त प्रकार से विभिन्न वर्ग, मत, सम्प्रदाय, जाति के रूप में अनेक समुदाय होने का आधार रहा। इसका निराकरण के लिए ''मानव जाति एक कर्म अनेक'', ''धरती एक राज्य अनेक'', ''ईश्वर एक देवता अनेक'', ''मानव धर्म एक मत अनेक'', इन चार तथ्यों को हृदयंगम करने की आवश्यकता है। इन तथ्यों को ध्यान में लाने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत हुआ। इसके पहले विचारधारा दो स्वरूपों में उपलब्ध हुई थी एक भौतिक वाद दूसरा आदर्शवाद इन दोनो विचार धाराओं ने मानव को प्रमाण का आधार नहीं माना। जबकि मानव ही प्रमाण होना आवश्यक है। आदर्शवाद ने किताब को प्रमाण माना है। किताब को पढ़कर सुनाना ही विद्वता माना गया है। भौतिकवाद ने यंत्र को प्रमाण माना।

जब से राज युग आरंभ हुआ राज्य की परिकल्पना, संस्कृति, सीमा, सभ्यता को पहचानने की आवश्यकता आ गई। इसके साथ राज्य व्यवस्था आई। शनैः शनैः संविधान की पहचान आई। इस क्रम में गुजरते हुए राज युग में भी मानव के जान माल की सुरक्षा पूरी नहीं हो पायी। तब गणतन्त्र लोक तन्त्र की परिकल्पना आई राज युग में ही संविधानो की रचना हो चुकी थी।

स्वराज्य के नाम से सन् 1947 में भारत की सत्ता स्थानांतरित होकर अंग्रेजो से भारतीयों के हाथ में आई। तब से अभी तक अपने मनमानी रूप में जीने की छूट के रूप में स्वराज्य को पहचाना गया। शासन का मतलब संविधान के अनुसार संयत रहना, संविधान को मानना, संविधान के अनुसार जीना माना गया। सरकार का मतलब गद्दी परस्त जो कहे वही सही है बाकी सब गलत। ग्राम स्वराज्य इन तीनो विधि से कारगर नहीं होता है। इन तीनो प्रकार की मानसिकता से राज्य सफल होता नहीं। सन् 1947 से अभी तक देश के कोने-कोने से जिनको अच्छे आदमी माने रहते है अथवा जो लोगो को आश्वासन दिये रहते है ऐसे लोग जनप्रतिनिधियों के रूप में स्वीकृत होते है। केवल बातचीत करते है कोई निष्कर्ष अभी तक निकला नहीं जिससे सर्व शुभ हो। गांव के ग्राम पंचायतो में भागीदारी करते हुए लोग गांव के शुभ को कैसे पहचानेंगे। गांव से ही सर्वाधिक जनप्रतिनिधि निर्वाचित होकर राज्य सभा लोक सभा विधान सभा में जाते है तमाम सुविधा होते हुए कुछ निष्कर्ष निकाल नहीं पाये। गांव के लोग अपने गांव के शुभ सुख सुविधा की सुरक्षा को बनाये रखने के साथ मे न्याय सुरक्षा को बनाये रखे इसके लिए दिशा एवं लक्ष्य को कैसे पहचाना जाए सोचना चाहिए। तथा इस पर संवाद की आवश्यकता है। अभी न्यायालय में न्याय की पहचान नहीं हो पायी है। अभी तक न्यायालय में फैसले का सिलसिला चल रहा है वह भी गवाहियो के आधार पर ना कि घटना के आधार पर। न्याय के पक्ष में निर्णय के साथ सुधार का कोई कार्यक्रम नहीं रहा। अपराधी को न्यायिक बनाने की कोई व्यवस्था नहीं है। गलती करने वालो को सही करने की दिशा देने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसके मूल में सभी मानव यदि समझदार होते है तो गलती और अपराध करेगें ही नहीं, गलती अपराध मुक्त होना ही समाधान सम्पन्नता है। समाधान सम्पन्न मानसिकता से हर व्यक्ति परस्परता मे न्याय ही करता है अन्याय कर ही नहीं सकता। सभी मानव अपने में से न्यायिक होने के उपरान्त अन्याय का खतरा ही कहां है ?

सारे अपराध, अन्याय और गलतियाँ मानव के नासमझी की उपज है। समझदारी

के उपरान्त मानव का आचरण निर्धारित हो जाता है ध्रुव बिन्दु यही है। जब आचरण निश्चित, स्थिर, निरन्तर प्रभावशील होने लगता है तब भरोसा, विश्वास और सुन्दर कार्यक्रम उदयशील होते है यही समझदार व्यक्ति की महिमा है। समझदार मानव अपने में आश्वस्त रहकर विश्वास पूर्ण विधि से कार्य करने में समर्थ होता है। गलती, अन्याय मुक्ति के लिए हर नर नारी में स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा (समझदारी) और व्यक्तित्व (आहार, विहार, व्यवहार) में सन्तुलन, व्यवसाय (उत्पादन) में स्वावलम्बन, व्यवहार मे सामाजिक अर्थात अखंड समाज में भागीदारी होना आवश्यकता है। यह मानव वैभव का मूल स्वरूप है। यह समझदारी का भी फलन है। पद, पैसा, सम्मान पर विश्वास किया जाए अथवा इन छः महिमा में विश्वास किया जाए। इस पर जनचर्चा, विश्लेषण, निष्कर्ष की आवश्यकता है ही।

हर मानव स्वराज्य स्वतंत्रता चाहता ही है। स्वतंत्रता का स्वरूप यही है :-

- स्वयं में विश्वास करने में स्वतंत्रता
- श्रेष्ठता का सम्मान करने में स्वतंत्रता
- प्रतिभा को लोकव्यापीकरण में स्वतंत्रता
- व्यक्तित्व को प्रमाणित करने की स्वतंत्रता
- उत्पादन में स्वावलंबी होने की स्वतंत्रता
- व्यवहार में सामाजिक होने की स्वतंत्रता

यही छः विधा में स्वतंत्रता है इसमें निष्णात होने के फलस्वरुप :-

- मानवीय शिक्षा कार्य में स्वतंत्रता
- न्याय सुरक्षा कार्य में स्वतंत्रता
- उत्पादन कार्य में स्वतंत्रता
- विनिमय कार्य में स्वतंत्रता
- स्वास्थ्य-संयम कार्य में स्वतंत्रता

स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होती है। इनमें हमे पारंगत होना है प्रमाणित होना है यही स्वतंत्रता का वैभव है। स्वतंत्रता के साथ स्वराज्य, स्वराज्य के साथ स्वतंत्रता अविभाज्य है। परिवार संबंध, मानव संबंध, प्राकृतिक संबंधो में न्याय और संतुलन

प्रमाणित करने में स्वतंत्रता बनी ही रहती है।

समाधानित मानव में, से, के लिए कृत कारित, अनुमोदित विधि से किया गया सम्पूर्ण क्रियाकलाप स्वतंत्रता है। उसके परिणामों की पहचान ही स्वराज्य है। स्वयं का वैभव अर्थात मानवकुल का वैभव स्वयं में स्वराज्य है। मानव कुल समझदारी के आधार पर ही संयुक्त वैभव को प्रमाणित कर पाता है न कि युद्ध, शोषण, द्रोह, विद्रोह से। संग्रह सुविधा के सर्वाधिकता के जगह में भी हजारो लाखो लोग इस धरती पर हो चुके हैं। इसके बावजूद पद, पैसा, प्रतिष्ठा सम्पन्न होते हुए उनके स्वयं में तृप्ति का न होना पाया जा रहा है। इस स्थिति में पद, पैसा, प्रतिष्ठा के आधार पर राज्य गद्दी क्या सफल हो पायेगी? क्या स्वराज्य मिलेगा? क्या मानव स्वतंत्र हो पायेगा? ऐसा हम सोचने विचारने जाते है तब इससे नहीं होगा, यही आवाज निकलती है। इसी मुद्दे पर विचार की आवश्यकता इस व्यवहारात्मक जनवाद के माध्यम से प्रस्तुत करने मे प्रयत्न शील है।

एक ज्वलंत प्रश्न है किताब प्रमाण होगा, यंत्र प्रमाण होगा या मानव प्रमाण होगा? यदि मानव ही प्रमाण होगा तब हम आगे समझ बूझ तैयार करेगे यह मानव स्वीकृति के आधार पर निर्भर है। यंत्र और किताब के प्रमाण के आधार पर मानव कुल अभी तक स्वराज्य और स्वतंत्रता का इन्तजार करता ही आया है। अपनी अपनी संस्कृति, सभ्यता, धर्म, पूजा पाठ में स्वतंत्रता संविधानों में उल्लेखित है। इस प्रकार की स्वतंत्रता में न तो सार्वभौमता हुई न सार्वभौमता का रास्ता मिल पाया। यंत्रो के आधार पर जो स्वतंत्रता है वह स्वतंत्रता के लिए मूल वस्तु धन होना पाया गया इसलिए मानव धन संग्रह मे ज्यादा से ज्यादा अपनी मानसिकता और श्रम को नियोजित किया। हर समुदायों की अपनी अपनी पूजा स्थली होती है जो निर्माण शिल्प विधाओं से बनी रहती है। इसमे पूजा करने वाले या ऐसे स्मारको में पूजा प्रार्थना करने वाले सब समुदाय अपने को अलग अलग मान लेते है। जबकि ये सब मानव ही रहते है। यही मूलत: स्वयं में अविश्वास का आधार रहा है। क्योंकि स्वयं का स्वरूप मानव ही होता है और कुछ भी नहीं होता है। हर समुदाय में प्रतिबद्ध मानव अन्य समुदायों से भिन्न मानना एक आदत बनी रहती है। आदतन अपने को जब मानव गिरफ्त कर लेता है अन्धकूप में हो जाता है। गिरफ्त होने का मतलब जो सर्व स्वीकृति की वस्तु न हो, ऐसी वस्तु (स्वयं स्वीकृति) मे प्रतिबद्धता आ जाये, कट्टरता आ जाये, बर्बरता आ जाये, यही गिरफ्त होने का प्रमाण है। हर समुदाय या कोई भी समुदाय इस प्रकार की गिरफ्त मे न तो स्वराज्य पाता है न स्वतंत्रता को पाता है,

न व्यवस्था को पाता है। परिणाम स्वरूप व्यवहार मानव हो ही नहीं सकता।

हम मानव अपने में देख रहे हैं हर समुदाय में अन्तर्विरोध और परस्पर समुदायो में विरोध है। विरोध समाज का सूत्र नहीं है व्याख्या नहीं है। इसी लिए समुदाय संविधान सार्वभौम होना संभव नहीं हुआ इसलिए मानवीय संविधान को पहचानने की आवश्यकता आ चुकी है। इस पर परामर्श आवश्यक है। मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान मानव के पहचान के आधार पर ही आधारित रहेगा। मानव की पहचान अपने में परिभाषा, आचरण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का संयुक्त वृत में स्वीकार होती है। मानव की परिभाषा मनाकार को साकार करने वाला मन: स्वस्थता को प्रमाणित करने वाला है। मनाकार को मानव आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया है। जहां तक मन: स्वथता को प्रमाणित करने की बात आती है इस मुद्दे पर सोच विचार तैयार नहीं हुए, चाहत सभी में है। इसके लिए सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व को समझने समझाने का, जीवन ज्ञान को समझने समझाने का, मानवीयता पूर्ण आचरण को समझने समझाने का अधिकार अर्हता सहित पारंगत होने के आधार पर इस परिभाषा को मानव के सम्मुख रखा गया है। समझदारी में पारंगत होने के उपरान्त ही मानव की परिभाषा स्वाभाविक रूप में स्पष्ट हो गई। इसी आधार पर हम विश्वास करते है कि समझदारी का लोकव्यापीकरण होना स्वाभाविक है। समझदारी ही मानव परिभाषा के अनुसार प्रमाण हो पाता है अन्यथा हम परिभाषा के अनुरूप प्रस्तुत नहीं हो पाते।

मानवीयता पूर्ण आचरण को सहअस्तित्व रूपी दर्शन के आधार पर जीवन ज्ञान के आधार पर पहचाना गया है। मानवीयतापूर्ण आचरण का पहला आयाम सबंधो को पहचानना, मूल्यो का निर्वाह करना, मूल्यांकन करना, परस्परता में तृप्ति को पाना। दूसरा आयाम में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य करना। तीसरे आयाम मे तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा करना। तन, मन, धन रूपी अर्थ के सदुपयोग का तात्पर्य परिवारगत आवश्यकता के अनुसार शरीर पोषण संरक्षण और समाजगति में नियोजित करना। मानव समाज अखंड समाज ही होता है। समाज गति का तात्पर्य अखंड समाज के अर्थ में भागीदारी करना अर्थात सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना।

परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक समाज गति के अर्थ को ध्वनित करता है यह ध्वनि परिवार में न्यूनतम होकर विश्व परिवार में सर्वाधिक विशाल हो जाती है इस बीच क्रम विधि से परिवार व्यवस्था से, परिवार समूह व्यवस्था, परिवार समूह व्यवस्था

से ग्राम मोहल्ला परिवार व्यवस्था ग्राम मोहल्ला परिवार व्यवस्था से ग्राम मोहल्ला परिवार सभा, ग्राम मोहल्ला समूह व्यवस्था से क्षेत्र परिवार व्यवस्था, क्षेत्र परिवार व्यवस्था से मंडल परिवार व्यवस्था, मंडल परिवार व्यवस्था से मंडल समूह परिवार व्यवस्था, मंडल समूह परिवार व्यवस्था से मुख्य राज्य परिवार व्यवस्था, मुख्य राज्य परिवार व्यवस्था से प्रधान राज्य परिवार व्यवस्था, प्रधान राज्य परिवार व्यवस्था से विश्व राज्य परिवार व्यवस्था तक बुलंद होती जाती है यह व्यवस्था में भागीदारी की बुलंदी है बुलंदी का मतलब मजबूती से है। इसप्रकार हर मानव अपनी पहचान को परिवारगत व्यवस्था से दस सोपानीय व्यवस्थाओं में पहचान बनाना सहज है।

प्रौद्योगिकी प्रक्रिया प्रणाली उसके साथ तकनीकी आरक्षण, यह कहां तक न्यायिक है। सम्पूर्ण ज्ञान लोकार्पित होना ही उसकी ख्याति है। लोकार्पण न हो पाना उसका ख्याति न होकर अज्ञान कहा जाता है। इस तर्क से यही स्पष्ट होता है प्रौद्योगिकी प्रणालियों का पेटेन्टीकरण मानव के हित में नहीं है। तकनीकी का लोकव्यापीकरण ही उसका सम्मान है। इस क्रम से ज्ञान की तीन विधाओ को पहचाने है अस्तित्व ज्ञान, जीवन ज्ञान, तकनीकी ज्ञान। इन तीनो प्रकार के ज्ञान का निपुणता-कुशलता-पाण्डित्य लोकव्यापीकरण करने की विधि से ही अभ्युदय होना स्वाभाविक है। अभ्युदय का तात्पर्य है सर्वोतोमुखी समाधान पूर्वक जीने की सहज प्रक्रिया। जिसमें पहले से जिक्र किया हुआ प्रतिभा का छः स्वरूप अपने आप में सन्तुलित रहना, प्रयोजनशील रहना पाया जाता है। इस विधि से सम्पूर्ण मानव इस धरती पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक जीने का दिन उदय होगा। इस पर जनचर्चा से संगीतीकरण विधि प्राप्त करना आवश्यक है।

प्रतिभाओं की पहचान :

स्वयं पर विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, समझदारी और व्यक्त्वि में सन्तुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन यह छः स्वरूप प्रतिभा का प्रमाण होता है। प्रतिभा मूलतः समझदारी, ज्ञान ही है। सहअस्तित्व दर्शनज्ञान जीवन ज्ञान मानवीयतापूर्ण आचरणज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है यह ही मूल प्रतिभा है। यह प्रतिभा नियति विधि से उपलब्ध है नियति विधि का तात्पर्य नित्य निरन्तर शास्वत रूप में विद्यमान है ही। क्योंकि सहअस्तित्व नित्य विद्यमान है। सहअस्तित्व में जीवन भी नित्य स्पष्ट है। इस प्रकार प्रतिभा नित्य वर्तमान होना स्पष्ट है। ज्ञान और दर्शन ही सम्पूर्ण प्रतिभा का स्वरूप है।

प्रतिभा का स्वरूप ज्ञान और दर्शन के प्रतिपादन का प्रयोजन प्रमाणित करने की प्रवृति के रूप में भी पहचाना गया है। इन मुद्दो पर अच्छी तरह से जनचर्चा आवश्यक है। ऐसी शाश्वत प्रतिभा मानव परम्परा में ही प्रमाणित होना पाया जाता है। इसका कारण परिशीलन पूर्वक यह पाया गया है मानव शरीर परम्परा में ही जागृत जीवन सहज सम्पूर्ण ज्ञान उद्घाटित होने की व्यवस्था है। शरीर रचना इस प्रकार है कि जीवन जागृति पूर्वक अथवा समझदारी पूर्वक सम्पूर्ण ज्ञान को उद्घाटित कर सके। इसका प्रमाण यही है कि हर मानव कल्पनाशील और कर्म स्वतंत्र है।

अध्याय - 7

व्यवहारवादी कार्यकलाप

व्यवहारवादी कार्यकलाप

मानव व्यवहार अपने सम्पूर्ण रूप में या अपनी सम्पूर्णता के अर्थ में मानव संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था ही है। मानवीय आचरण संस्कृति, सभ्यता का प्रमाण रूप होना पाया जाता है। मानव संस्कृति स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में प्रमाणित होती है। सभ्यता का स्वरूप, सभ्यता का प्रमाण सम्बंध मूल्य, मूल्यांकन उभय तृप्ति के रूप में होता है। संस्कृति सभ्यता इन दोनो के आधार पर नैतिकता का स्वरूप तन, मन, धन, रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा स्पष्ट हो चुका है। इसके आधार पर मानवीयता पूर्ण आचरण स्पष्ट हो चुका है। इस मुद्‌दे पर लोक स्वीकृति की आवश्यकता है ही। यह जनचर्चा का मुद्‌दा है।

मानवीयता पूर्ण आचरण को हर विधा में पहचानने की विधि सहित संविधान मानवीय संविधान है। मानव परम्परा के लिए आचार संहिता की आवश्यकता बनी ही रहती है। मानवीय आचार संहिता को क्रम से स्पष्ट कर लेना ही अपने आप में जन मानस के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

मानव अपने में बहुमुखी प्रवर्तनशील है ऐसे प्रर्वतन में परिवार व्यवस्था में भागीदारी और समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रधान कार्य कलाप है। आचरणपूर्वक ही हर मानव हर क्रियाकलापो को कृतकारित, अनुमोदित विधि से कायिक, वाचिक, मानसिक रूप को व्यक्त कर पाते है। परिवार के बिना मानव की पहचान होती नहीं है। हर मानव किसी परिवार का अंगभूत होना पाया जाता है। इसके अलावा कोई पहचान भी नहीं होती है। किसी संस्था में भागीदारी भी परिवार संस्था में भागीदारी है तभी व्यक्ति की पहचान हो पाती है जागृत मानव परम्परा मे परिवार की पहचान अपने आप में सम्पूर्ण प्रकार से सम्मान सम्पन्न हो जाती है। क्योंकि हर परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का प्रमाण सदा बना ही रहता है। इससे अधिक उपलब्धि की आवश्यकता नहीं रह गई। यही मानव परम्परा में, से, के लिए परम लक्ष्य और उपलब्धि है। इसी में जीवनाकाँक्षा मानवाकाँक्षा ओत प्रोत विधि से सफल होना पाया जाता है।

जीवनाकांक्षा के अर्थ में ही संभवत: साधना अभ्यास, योग, ध्यान आदि को परम्परा मे पहचानने का प्रयास किया। इन सारे प्रयासों को प्रयास के रूप में ही देखा गया इसका फलन, लोकव्यापीकरण रूप में देखने को नहीं मिला। यदि जीवनाकांक्षा रूपी

सुख, शान्ति, सन्तोष, आनन्द प्रमाणित हो पाता है तब समाधान समृद्धि अभय सहअस्तित्व प्रमाणित होना अवश्यंभावी होता है।

समझदारी से सम्पन्न होने के क्रम में ध्यानपूर्वक ही सफल होना पाया जाता है। ध्यानपूर्वक सफल होने का तात्पर्य हम जो कुछ भी शब्दो को सुनते हैं सटीक सुनने से स्मरण तंत्र तक पहुंचना पाया जाता है। यह सटीक सुनने का तात्पर्य मन लगाकर सुनने से ही है। मन को लगाये रखना ही ध्यान का तात्पर्य है। मन हर नर नारियों में उद्‌देश्यों के साथ लगना देखा जाता है। इसका तात्पर्य उद्‌देश्यो का होना पहले से ही स्वीकृत होना आवश्यक है। जैसे मानव का अच्छा कपड़ा, अच्छा खाना, गाड़ी घोड़ा पद पैसा सम्मान का उद्‌देश्य बनता है उसी क्रम में समझदार बनने का उद्‌देश्य भी स्वाभाविक है। जैसे समझदारी के पहले जितने भी मुद्‌दे बताये हैं सबको मानव अपने उद्‌देश्य में स्वीकारना अभी तक सर्वेक्षित है। यह भी सर्वेक्षित है कि समझदारी की अपेक्षा छोटी आयु से ही प्रभावशील रहती है। कुछ आयु तक पद पैसा सम्मान को लक्ष्य बनाकर जैसा भी आदमी जूझता है अच्छे बुरे तरीके से कुछ पाता भी है खोता भी है। इस क्रम में हम चलते हुए कोई न कोई ऐसी जगह में पहुंचते है जिसके आगे हमको ज्ञान विवेक सूझता नहीं है, इसी का नाम है काला दीवाल। जिसे हम लक्ष्य पर बनाये थे उसे पाने के बावजूद समस्या शेष रह गयी इसका मतलब है हमारा लक्ष्य सही नहीं था। अत: लक्ष्य पर पुनर्विचार की आवश्यकता बनती है। इसके अभाव में मानव संकट ग्रस्त होता ही है। संकट से छूटना हर व्यक्ति चाहता है। इसलिए हम ज्ञानावस्था के मानव ऐसे लक्ष्य को पहचान ले जिससे सदा के लिए सर्वतोमुखी समाधान अर्जित होता रहे।

सर्वतोमुखी समाधान का धारक वाहक केवल मानव ही है और कोई वस्तु इस धरती पर विद्यमान नहीं है। ज्ञानतंत्रणा का भनक सुदूर विगत से मानवजाति को है। ज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा भी है। ऐसी ज्ञान सम्पन्नता के लिए भाँति-भाँति की कल्पना व्यक्तिवाद-समुदायवाद के रूप में भी प्रस्तुत होते आयी है। कल्पनाओं को मानव परीक्षण करने लगा किंतु कोई भी कल्पना, परिकल्पना प्रस्ताव, ज्ञान लोकव्यापीकरण होने की जगह में नहीं आया। इसके विपरीत कई समुदायो का ऐसा मानना है ज्ञान वर्णनीय नहीं है शब्दो से बताया नहीं जा सकता, शब्द ज्ञान को बोध कराने मे समर्थ नहीं है। ये सब बाते बताते रहे। समुदायों के बुजुर्ग ने जब यह देखा इसका लोकव्यापीकरण नहीं हो रहा है तब दूसरा रास्ता निकाला कि स्वर्ग में सुख मिलेगा और पुण्य कार्यो को निरूपित करना शुरू

किया। इसके लिए यज्ञ दान, तप, परोपकार बताया।

तप में जो कुछ स्वीकृतियाँ विभिन्न समुदायो में बनी है वे सब अपने अपने में एक बेहतरीन ढाँचा-खाँचा है। जो सामान्य जन के लिए कठिन है। ऐसे स्वरूप को बनाए रखना ही तप का फल माना गया। उसके साथ अपने ढंग की सम्भाषण की शैली, स्वर्ग में सुख मिलने का उपदेश, फलस्वरूप सम्मान पात्र बनने वाले भी बढ़ते रहे सम्मान करने वाले भी बढ़ते रहे। सिलसिला अभी भी जोर शोर से देखा जा रहा है। कुल मिलाकर आदर्श पूर्ण व्यक्तित्व अपने आप में सामान्य लोगो के लिए कठिन सा लगने लगा। सबके लिए सुलभ न लगना, जिनके सान्निध्य से सेवा से पुण्य मिलने का आश्वासन होना, मनोकामना पूरी होने का आश्वासन होना इसी चौखट को हम आदर्श कहते है। आदर्श का सम्मान सुदूर विगत से होते आया है, आज भी होता है। इसमें विचारणीय मुद्दा है आदर्शो का प्रयोजन फल लोकव्यापीकरण न होना, उपकार कैसे होगा, उपकार विधि का लोकव्यापीकरण मुद्दा होना है कि नहीं इस पर जनचर्चा की आवश्यकता बनी हुई है।

मानव सुदूर विगत से ही ज्ञान की बातें या सूचनाएँ सुनकर ज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा करता रहा। विज्ञान की सूचना सुनकर, विज्ञान सम्पन्न होने की इच्छा हर मानव में पायी जाती है। विवेक सम्पन्न होने की इच्छा भी हर मानव के मन में स्थान बनाकर रह गयी। इसमें आश्वासन देने वाली विधि से विज्ञान सर्वाधिक यांत्रिकता के अर्थ में जितना भी लोक सम्मत हुआ है उसमे सर्वाधिक आस्था निर्मित हुई। इसके बावजूद जब यंत्र बनने की बात आई वह थोड़े लोगो के हाथ में सिमट गई। यंत्र सबको मिल सकता है यंत्र सब बना नहीं सकते, इस कक्ष में पहुँच गये। इसमें उल्लेखनीय मुद्दा यही है हर नर-नारी को रोजमर्रा की यंत्र निर्माण विधा में पारंगत होना है या नहीं होना है। इस मुद्दे पर लोक चर्चा की आवश्यकता है।

तर्क संगत विधि से मानवीय व्यवस्था को हम सोच पाते है हर व्यक्ति को ज्ञान सम्पन्न होने की आवश्यकता है, ज्ञान ही समझ है। समझ ही विज्ञान और विवेक के रूप में योजित होता है प्रयोजित होने के क्रम में प्रक्रिया प्रणाली की विधि में तकनीकी को प्राप्त करना होता है। इस विधि से हम इस स्थिति में आते है कि समझदारी के उपरान्त जहाँ जैसी तकनीकी की आवश्यकता है वहाँ उसे सुलभ करने का उपक्रम परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में लोकव्यापीकरण होता है।

जिस गांव मोहल्ले में जितनी भी उत्पादन की आवश्यकता रहती है उसकी आवश्यकीय सभी मानवीय शिक्षा-संस्कार के साथ तकनीकी प्रशिक्षण ग्राम सभा में, ग्राम

समूह सभा अथवा क्षेत्र सभा के अधीनस्थ रहना स्वाभाविक रहता है। गांव के लिए जितनी भी तकनीकी प्रणालियाँ, पद्धतियाँ सुलभ होनी रहती है गांव में ही सुलभ हो जाती है। नहीं बन पाने की स्थिति में अन्य सोपानीय व्यवस्था में सुलभ रहता ही है। इस ढंग से हर मानव लक्ष्य के लिए दिशा निर्धारण, उसकी प्रमाणीकरण पद्धति में भागीदार होना सुगम हो जाता है। अब ऐसी सार्थक ज्ञान विज्ञान विवेक सम्पन्नता ही मानव परम्परा में जागृति का वैभव होना स्वाभाविक है।

समझदारी के लिए ध्यान अर्थात मन लगाना एक अवश्यंभावी कार्य है। आवश्यकता के आधार पर मन लगना बन जाता है। मन लगने के आधार पर समझदारी मानव का स्वत्व होना ही है क्योंकि अध्ययनपूर्वक ही मानव समझदारी सम्पन्न होता देखा गया है। हर मानव ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से समझदारी संपन्न हो जाता है। ध्यानपूर्वक अध्ययन करने का मतलब जो शब्दो को सुनते है उनका अर्थ स्वीकृत होना ही बोध है यही अध्ययन है। इसका मतलब हुआ अर्थ बोध होना ही अध्ययन है। अर्थ बोध होने का प्रमाण अस्तित्व में वस्तु का बोध होना। अस्तित्व में वस्तु का बोध होना ही सहअस्तित्व के बोध का स्वरूप है इसमें हर नर-नारी बोध सम्पन्न होना होता है। इस मुद्दे पर लोक संवाद अवश्यंभावी है।

अस्तित्व मे जो भी वस्तुएँ है उन सबका सहअस्तित्व मे वैभव होना समझ में आने के उपरान्त स्वयं भी सहअस्तित्व में होना बोध हो जाता है। होने का स्वरूप और वातावरण यह दोनो स्थितियाँ सहअस्तित्व दर्शन से स्पष्ट हो जाती है फलस्वरूप मानव यथास्थिति को पहचानने में समर्थ हो जाता है। अर्थात जागृति सम्पन्न स्थिति को समझने में सम्पन्न हो जाता है। जागृति के आधार पर यथास्थितयों को पहचानने की स्थिति में विज्ञान और विवेक सम्मत निश्चयन सहित कार्यकलापो में प्रवृत होना पाया जाता है। यह पहले से विदित हो चुकी है कि विवेक का प्रयोजन लक्ष्य को पहचानने और निर्धारित करने में और विज्ञान का तात्पर्य दिशा निर्धारित करने पहचानने में होना पाया गया है। फलस्वरूप व्यवहार और कार्य इन दोनो में सहअस्तित्व प्रमाणित हो जाता है। सहअस्तित्व को प्रमाणित होने के क्रम में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व प्रमाणित होता है। फलस्वरूप परिवारमूलक स्वराज्य विधि से हर नर-नारी अपने सौभाग्य को प्रमाणित कर देना सहज है। यह भी मुद्दा जनचर्चा के लिए प्रस्तुत है। इसमें जनसंवाद का मुद्दा यही है हमें जागृत होने के लिए तत्पर होना है कि नहीं होना है।

विज्ञान विधि से काल के साथ क्रिया का, क्रिया के साथ काल को निर्धारित करने

की एक सहज प्रणाली बन जाती है। क्योंकि विश्लेषण विधि से सम्पूर्ण प्रकार का वस्तु ज्ञान हुआ ही रहता है। वस्तु ज्ञान के साथ संयोजन ज्ञान हुआ रहता है। संयोजन ज्ञान के साथ परिणाम एवं प्रयोजन ज्ञान हुआ रहता है। इन सभी आधारो के साथ निर्णय होना सहज रहता है। इसकी औचित्यता को लक्ष्य के आधार पर परिशीलन करना विवेक विधि से सम्पन्न हो जाता है। विवेक विधि का उदय सहअस्तित्व ज्ञान से सम्पन्न हुआ रहता है। विवेक विधि से सहअस्तित्व का नजरिया सुस्पष्ट रहता है। सहअस्तित्व के नजरिया में समाधान, समृद्धि अभयता का स्वरूप समाया रहता है। अतएव इन लक्ष्यो के अर्थ में संश्लेषण होना एक स्वाभाविक क्रिया है। इसी के चलते लक्ष्य सम्मत दिशा निर्धारित हो जाती है। ऐसे निर्णयो के आधार पर योजना, कार्य योजना स्वीकार होती है। ऐसे स्वीकारने के आधार पर प्रतिबद्धता में निष्ठा होना पाया जाता है। इस विधि से हम जीकर प्रमाणित होने की स्थिति में पहुँचते है। इसकी आवश्यकता, जनसंवाद, परामर्श एक आवश्यकीय कार्यकलाप है। सहअस्तित्व विधि अपने आप सार्वभौम होना स्वाभाविक है। सहअस्तित्व अपने में सम्पूर्ण अस्तित्व की ध्वनि को ध्वनित करता है। सम्पूर्ण अस्तित्व अपने में चार पद, चार अवस्थाओं में होना पाया जाता है। इसमे से चार पद प्राणपद, भ्रान्तिपद, देवपद, दिव्यपद के रूप में अध्ययन होता है। चार अवस्थाएँ पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था में गण्य होती है। ऐसी स्वीकृतियाँ बहुत जटिल भी नहीं है। पदार्थावस्था के मूल में सम्पूर्ण प्रजाति के परमाणुओ का अध्ययन है। इनमें से कुछ प्रजातियाँ को मानव पहचाना भी है। नहीं पहचानी हुई प्रजातियाँ पहचान में आने की सम्भावना बनी हुई है। इस मुद्दे पर पहले भी जिक्र हुआ है कितनी प्रजाति के परमाणु होना संभावित है यह स्पष्ट किया जा चुका है। भौतिक परमाणुएँ 120 या 121 संख्या में होने की बात सूचित हो चुकी है इनमे से 60 भूखे परमाणु के कोटि में, अन्य अजीर्ण कोटि में गण्य है। चैतन्य परमाणु अपने में एक ही प्रजाति का होता है। चैतन्य इकाई की प्रजाति एक होते हुए भी जीने की आशा के आधार पर अपने में स्वयं स्फूर्त कार्य, गति, पथ भिन्न-भिन्न आकार का होता है यह पूंजाकार ही होता है। पूंजाकार का तात्पर्य एक अलात चक्र अनुभव किया जाता है। अलात चक्र का तात्पर्य रस्सी के एक छोर में आग लगाकर घुमाने से आंखो से सभी ओर आग दिखाई देती है जबकि आग रस्सी के एक छोर में ही रहती है। पंखा जब घूमने लगता है एक गोलाकार चक्र जैसा दिखता है जीवन परमाणु अपने में गठनपूर्ण होते हुए संख्या में एक होता है। यही आशा की गति में गतित होना पाया जाता है। उस गति को मानव संख्या में लाना संभव नहीं है इसी आधार पर जीवन गति अन्य

सभी गति को नाप तौल के रूप में परिगणित कर लेता है। कार्य, गति, पथ सहित जीवन अपने में एक आकार प्रकार हो जाता है इस आकार प्रकार का शरीर रचना किसी अंडज पिंडज संसार में बना ही रहता है। जीवन जीने की आशा सहित होने के आधार पर शरीर को जीवन माना रहता है। मानव परम्परा में ऐसी शरीर रचना रचित हो चुकी है जिसको चलाने के क्रम में जागृति की आवश्यकता महसूस होना और प्रमाणित होना है। इसी तथ्य वश मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद तथ्य उद्घाटन करने के लिए प्रस्तुत हुआ । यह जनचर्चा के लिए महत्वपूर्ण है। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव होना पाया गया है। शरीर के साथ जीवन न होने की स्थिति में मृतक माना जाता है। संवेदनशीलता, संग्रह सुविधा हर हालत में कुंठा ग्रस्त होने का आधार है। इसी की अनुकूलता प्रतिकूलता के चलते द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध तक मानव जाति अपना कुनबा जोड़ लिया है। इससे त्रस्त होना स्वाभाविक है। इस आधार पर जागृति की आवश्यकता बलवती होती गई। इस मुद्दे पर भी हाँ/ना के अर्थ में जनसंवाद की आवश्यकता है। जागृति विधि से मानव परम्परा में व्यवस्था में जीने का ही कार्यक्रम बनाता है। व्यवस्था में जीने का ही फलन है समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण । इसी से सुख, शान्ति, संतोष, आनन्दपूर्वक जीना बन जाता है। यही मानव का सर्वकालीन उद्देश्य है अथवा निरन्तर उद्देश्य है। इन उद्देश्यो को प्रमाणित करने के रूप में जीना ही जागृति पूर्वक जीने का प्रमाण है। इस विधि से जितने प्रकार की समस्याएँ हैं मानव द्वारा निर्मित वह सब समाप्त होना समीचीन है इस मुद्दे पर भी मानव अपनी संवाद विधि को आगे बढ़ा सकता है।

जागृति पूर्वक जीने में समझदारी व्यवस्था और मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही कार्यक्रम के रूप में निर्धारित होता है। मानव लक्ष्य अपने आप में स्पष्ट हो चुका है। ऐसे लक्ष्य को प्रमाणित करती हुई मानव परम्परा जागृत मानव परम्परा में होना पायी जाती है। ऐसी स्थिति में मानवीय शिक्षा-संस्कार का प्रबल प्रमाण परम्परा में बना ही रहता है। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन पूरा हो जाता है। मानव के अध्ययन में शरीर और जीवन ही है। इसके कारण रूप में समग्र अस्तित्व ही है। समग्र अस्तित्व में पूरक विधि से जीवन का होना और भौतिक रासायनिक वस्तुओ की रचना विधि से मानव शरीर का भी रचना होना वर्तमान है। शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में मानव अपने कार्यकलापो को करता हुआ, जीता हुआ, अपनी पहचान बनाने के लिए यत्न प्रयत्न करता हुआ देखने को मिलना स्वाभाविक है। जागृत परम्परा में शिक्षा में सम्पूर्ण अस्तित्व का अध्ययन एक मौलिक विधा है। पूरकता विधि से एक दूसरे की यथा स्थितियो का वैभव समझ में आता

है। इसी क्रम में हर पद और अवस्था की यथा स्थितियाँ अध्ययनगम्य हो जाती है। अध्ययनगम्य होने का तात्पर्य सह-अस्तित्व में होने के रूप में स्वीकृत होने से है। अस्तित्व में जो कुछ होता है, जो कुछ है उसी का अध्ययन है। अस्तित्व में जितनी भी विविधता दिखाई पड़ती है इन सभी में विकास और जागृति का सूत्र समाया रहता है। फलन में मानव जागृति को प्रमाणित करने के लिए उद्यत है ही। इस प्रकार मानव परम्परा को जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना सुलभ हो जाता है। संवाद का मुद्दा यही है कि जागृति हमको चाहिये कि नहीं।

मेरे अनुसार लोकमानस जागृति के पक्ष में है जागृति का मतलब जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है। मानव परम्परा में अभी छः सात सौ करोड़ की जनसंख्या बतायी जाती है। इन सात सौ करोड़ आदमियों मे से कोई ऐसा मेरी नजर में नहीं आता है जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से मुकरे। जानने, मानने के उपरान्त पहचानना निर्वाह करना स्वाभाविक होता है। जानना मानना नहीं होने पर भी मानव में पहचानना निर्वाह करना होता ही है। न जानते हुए पहचानने के लिए प्रयत्न संवेदनशीलता के साथ ही हो पाता है। मानव परम्परा में संवेदनाओ का आधार झगड़े की जड़ बन चुकी है। हर मानव आवेशित न रहते हुए स्थिति में झगड़े के पक्ष में नहीं होता है जब आवेशित रहता है तभी झगड़े के पक्ष में होता है। आवेशित होना भय और प्रलोभन के आधार पर ही होता है। सारे प्रलोभन संवेदनाओं के पक्ष में है सारे भय भी संवेदनाओ के आधार पर ही है। इसलिए समझदारीपूर्वक व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के कार्यक्रम में क्रियाशील रहना, निष्ठान्वित रहना ही समाधान परम्परा का आधार है। समाधान अपने आप में न भय है न प्रलोभन है निरन्तर सुख का स्रोत है। यही संज्ञानशीलता का प्रमाण है। यही मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार का फलन है। इस प्रकार से जीने के लिए आवश्यक जनचर्चा, संवाद विश्लेषण अपने आप में महत्व पूर्ण मुद्दा है।

शिक्षा में अथवा शिक्षा विधि में जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शनज्ञान सम्पन्न शिक्षा रहेगी ही। इसे पाने के लिए समाधानात्मक भैतिकवाद का अध्ययन कराया जाता है। जिससे संपूर्ण भौतिकता रसायन तंत्र में व्यक्त होते हुए संयुक्त रूप में विकास क्रम को सुस्पष्ट किये जाने का तौर तरीका और पूरकता रूपी प्रयोजनो का बोध कराया जाता है। समाधानात्मक भौतिकवाद परमाणु में विकास, परमाणु में प्रजातियां होने का अध्ययन पूरा कराता है। परमाणु विकसित होकर जीवन पद में संक्रमित होता है दूसरी भाषा में विकसित परमाणु ही जीवन है। हर भौतिक परमाणु में श्रम, गति, परिणाम का होना समझ में आता

है। जबकि गठनपूर्ण परमाणु (चैतन्य इकाई) परिणाम प्रवृति से मुक्त होता है। दूसरी भाषा में जीवन परमाणु परिणाम के अमरत्व पद में होना पाया जाता है। अमरत्व की परिकल्पना प्राचीन काल से ही देवताओं को अमर, आत्मा को अमर कहना यह आदर्शवाद है। यह मन में रहते आयी है। इसे चिन्हित रूप मे सार्थकता के अर्थ मे अध्ययन करना कराना संभव नहीं हुआ था। सहअस्तित्व विधि से यह संभव हो गया। इस क्रम मे जीवन के सम्पूर्ण क्रियाकलापो जैसे जीवन में जागृति, जागृति क्रम में जाग्रति एवं जीवन का अमस्व का अध्ययन भली प्रकार से हो पाता है। जागृति में समाधान का उदय होने पर समाधानात्मक भौतिकवाद की सार्थकता समझ मे आती है। भौतिकवाद को संघर्ष का आधार माना जाये या समाधान का। इस पर संवाद एक अच्छा कार्यक्रम है।

मानवीय शिक्षा मे व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तुत हुआ है। इसका प्रयोजन इंगित सभी मुद्दो में सकारात्मक पक्ष को स्वीकारना है ऐसी मान्यता हमारी हैं। इसी के तहत यह पूरा वांगमय अध्ययन और संवाद के लिए प्रस्तुत है।

मानवीय शिक्षा मे अनुभवात्मक अध्यात्मवाद को अध्ययन कराया जाता है जिसमे अध्यात्म नाम की वस्तु को साम्य ऊर्जा के रूप में जानने, मानने, पहचानने की व्यवस्था है। सम्पूर्ण प्रकृति, दूसरी भाषा में सम्पूर्ण एक एक वस्तुएँ, तीसरी भाषा मे जड़-चैतन्य प्रकृति, चौथी भाषा मे भौतिक, रासायनिक और जीवन कार्यकलाप व्यापक वस्तु मे सम्पृक्त विधि से नित्य क्रियाकलाप के रूप मे वर्तमान है। इसे बोधगम्य कराते है यही सहअस्तित्व का मूल स्वरूप है। इस मुददे को बोध कराना बन जाता है। बोध को प्रमाणित करने के क्रम मे अनुभव होना सुस्पष्ट हो जाता है। जिससे अनुभवमूलक विधि से हर नर-नारी को जीने के लिए प्रवृति उदय होती है। इस तथ्य के आधार पर संज्ञानशीलता को प्रमाणित करना संभव हो जाता है। संज्ञानशीलता अपने आप में सर्वतोमुखी समाधान होना पाया जाता है। अनुभावात्मक अध्यात्मवाद सर्वतोमुखी समाधान के स्रोत के रूप में अध्ययन विधा से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। संवाद के लिए उल्लेखनीय मुददा यही हैं अनुभवमूलक विधि से जीना हैं या नहीं, समाधानपूर्वक जीना है या नहीं।

मानवीय शिक्षा में मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का अध्ययन करने कराने का प्रावधान है। मानव संचेतना को मानव संवेदनशीलता और संज्ञानशीलता के रूप में माना गया है। जिसके अध्ययन से संज्ञानशीलता पूर्वक जीने की विधि बन जाती है। संज्ञानशीलता पूर्वक जीने का तात्पर्य मानव लक्ष्य को सार्थक बनाना है। परम्परा के रूप में इसकी निरन्तरता होना हैं। मानव की हैसियत को, मानसिकता को, अथवा जागृति मूलक

मानसिकता को महसूस कराता है। साथ में जागृति की महिमा मानव परंपरा के लिए प्रेरणा देता है। क्योंकि मानव संज्ञानशीलता पूर्वक लक्ष्य मूलक विधि से जीना ही मानव परम्परा का वैभव है अर्थात स्वराज और स्वतंत्रता है। इस तथ्य को भली प्रकार बोध कराते है। इसमें संवाद के लिए मुद्दा यही है मानव मूल्य मूलक विधि से जीना हैं या रूचिमूलक विधि से जीना है।

मानवीय शिक्षा क्रम में व्यवहारवादी समाजशास्त्र को अध्ययन कराया जाता हैं। जिसमें मानव मानव के साथ न्याय, समाधान, सहअस्तित्व प्रमाणपूर्वक जीने के तथ्यों को बोध कराया जाता है। जिससे सहअस्तित्व बोध, जीवन बोध सहित व्यवस्था में जीना सहज हो जाता है। इसमें संवाद का मुद्दा हैं सहअस्तित्व बोध सहित जीना हैं या केवल वस्तुओं को पहचानते हुए जीना है। मानवीय शिक्षा में आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को अध्ययन कराया जाता है। अर्थ की आर्वतनशीलता के मुद्दे पर यह बोध कराया जाता है कि श्रम ही मूलपूंजी है। प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता मूल्य को स्थापित किया जाता है। उपयोगिता के आधार पर वस्तु मूल्यन होना पाया जाता है। इस विधि से हर व्यक्ति अपने परिवार मे कोई न कोई चीज का उत्पादन करने वाला हो जाता है। इस ढंग से उत्पादन में हर व्यक्ति भागीदारी करने वाला हो जाता है फलस्वरूप दरिद्रता व विपन्नता से और संग्रह सुविधा के चक्कर से मुक्त होकर समाधान समृद्धिपूर्वक जीने का अमृतमय स्थिति गति बन जाती है। इसमें जन संवाद का मुद्दा यही है हम मानव परिवार में स्वायत्तता, स्वावलम्बन, समाधान, समृद्धि पूर्वक जीना है या पराधीन परवशता संग्रह सुविधा मे जीना है। आवर्तनशील अर्थव्यवस्था में श्रम मूल्य का मूल्याँकन करने की सुविधा हर जागृत मानव परिवार मे होने के आधार पर वस्तुओ का आदान-प्रदान श्रम मूल्य के आधार पर सम्पन्न होना सुगम हो जाता है। इससे मुद्रा राक्षस से छुटने की अथवा मुक्ति पाने की विधि प्रमाणित हो जाती है। जिसमें शोषण मुक्ति निहित रहती है। अतएव संवाद का मुद्दा यही है कि लाभोन्मादी विधि से अर्थतंत्र को प्रतीक के आधार पर निर्वाह करना है या श्रम मूल्य के आधार पर वस्तुओ के आदान-प्रदान से समृद्ध रहना है।

मानवीय शिक्षा में मानव व्यवहारदर्शन का अध्ययन कराना होता है जिसमें अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का बोध, इसकी आवश्कता का बोध कराया जाता है। मानव व्यवहार में प्राकृतिक नियम, बौद्धिक नियम और सामाजिक नियमों को बोध कराने की व्यवस्था रहती है। जिससे समाज की सुदृढ़ता, वैभव पूर्णता का बोध कराया जाता है। फलस्वरूप हर मानव अखंड समाज के अर्थ में अपने आचरणों को प्रस्तुत करना प्रमाणित

होता है। इस प्रकार ऐसे अखंड समाज के अर्थ मे सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होना होता है। यही स्वतंत्रता और स्वराज्य का प्रमाण है। अस्तु संवाद का मुद्दा है अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में जीना चाहिये या समुदाय गत राज्य के अर्थ में जीना चाहिये।

मानवीय शिक्षा में कर्म दर्शन का अध्ययन कराया जाता है जिसमें कायिक, वाचिक, मानसिक, कृतकारित, अनुमोदित भेदों से हर मानव को कर्म करने की सत्यता को बोध कराया जाता है। इससे मानव का विस्तार समझ में आता है। इससे स्वयं में विश्वास का आधार बनता है। मानसिक रूप में जितनी भी क्रियाएँ होती है वे सब कायिक और वाचिक मानसिक विधि से कार्यरूप में परिणित होती है। फलस्वरूप उसका फल परिणाम होता है फल परिणाम के आधार पर समाधान या भ्रमवश समस्या का होना पाया जाता है। जागृत परम्परा में किसी भी प्रकार की समस्या का कायिक या वाचिक मानसिक विधि से निराकरण स्वयं से ही निष्पन्न होना पाया जाता है। इस तरह से स्वायत्तता का प्रमाण मिलता है। स्वायत्तता अपने में सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्नता ही है। जहाँ कहीं भी स्पष्ट रूप में देखने को मिलेगा समस्या का निराकरण स्वयं में ही हो जाने को स्वायत्तता बताई गयी है। कार्य का स्वरूप नौ प्रकार से बताया गया है। यह उत्पादन कार्य, व्यवहार कार्य और व्यवस्था कार्य में प्रमाणित होना देखा गया है। सभी कार्य इन तीन तरीकों से ही सम्पन्न होना देखा गया है। इन सभी कार्यो का उद्‌देश्य एक है मानवाकांक्षा को सफल बनाना। यही मानव लक्ष्य होने के आधार पर कर्मतंत्र, व्यवहार तंत्र, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का तंत्र ये तीनो तंत्र मानव लक्ष्य को प्रमाणित करना ही है। इसी का नाम कर्मदर्शन है। कर्मदर्शन का सम्पूर्ण स्वरूप अपने में मानव जितने प्रकार के कार्य करता है, उसकी सार्थकता क्या है, कैसे किया जाये। इन तीनो विधा में अध्ययन कराता है। इससे मानव जाति मार्गदर्शन पाने की अथवा व्यवस्था में जीने की प्रेरणा पाना एक देन है। अतएव कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाकलापो में संगीतमयता की आवश्यकता पर एक अच्छा संवाद हो सकता है। मानव की संम्पूर्ण संवेदनाएँ अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के रूप में पहचानी जाती है जिसे हर सामान्य व्यक्ति पहचानता है। इसके नियंत्रण के लिए सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आचरण को संजो लेने का प्रमाण प्रस्तुत करना ही अभ्युदय समाधान है। इसका मुद्दा यही है कि कायिक वाचिक मानसिक रूप में एकरूपता चाहिये या नहीं। यदि चाहिये तो मध्यस्थ दर्शन सहअस्तितत्ववाद में पारंगत होना आवश्यक है। नहीं की स्थिति में इसकी जरूरत नहीं है।

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अनुसार अभ्यास दर्शन सर्वमानव के लिये अध्ययन के अर्थ में प्रस्तुत है। अभ्यास दर्शन अपने में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित क्रियाकलापो में सार्थकता का प्रतिपादन है । ''अभ्यास दर्शन'' समझदारी के लिए अभ्यास को स्पष्ट करता है। एवं समझने के उपरान्त समझदारी को प्रमाणित करने की अभ्यास विधियो का अध्ययन कराता है। अध्ययन होने का प्रमाण अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने का प्रतिपादन है। अनुभव सहअस्तित्व में होने का स्पष्ट अध्ययन करा देता है, बोध करा देता है। इससे मानव परम्परा में प्रमाणित होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इसमें जीवन समुच्चय का और दर्शन समुच्चय का आशय सुस्पष्ट हो जाता है। जीवन समुच्चय अपने में दृष्टा पद् प्रतिष्ठा सहित कर्ता-भोक्ता पद में प्रमाणित होने का बोध होता है। सम्पूर्ण अस्तित्व ही जीवन के लिए दृष्य रूप में प्रस्तुत रहता है। सम्पूर्ण दृष्य व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित है। नियम-नियंत्रण-संतुलन ही इसका सूत्र है। नियम की व्याख्या सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में प्रत्येक एक एक की यथास्थिति के आधार पर निश्चित आचरण ही व्याख्या है। ऐसा निश्चित आचरण ही हर इकाई का त्व है। ऐसी यथा स्थितियाँ और आचरण परिणामानुषंगी विधि से, बीजानुषंगीय विधि से एवं आशानुषंगीय रूप में स्पष्ट होता हुआ देखने को मिलता है। अभ्यास दर्शन ऐसी स्पष्टता को स्पष्ट रूप में अध्ययन करा देता है। सभी स्पष्टताएँ नियम, नियंत्रण, सन्तुलन से गुथी हुई के रूप में होना पाया जाता है। इस भौतिक रासायनिक रूपी बड़े छोटे रूप में होना पाया जाता है । होना ही अस्तित्व है । मानव भी जड़ चैतन्य प्रकृति के रूप में होना अध्ययनगम्य है। इसी आधार पर चैतन्य प्रकृति में दृष्टा पद प्रतिष्ठा होना, इसके वैभव में ही दृष्टा-कर्ता-भोक्ता पद का प्रमाण प्रस्तुत करना ही जागृति का प्रमाण है। अभ्यास दर्शन इन तथ्यो को अध्ययन कराता है। इसमें मुद्दा यही है कि हमे सम्पूर्ण अध्ययन करना है तो मध्यस्थ दर्शन ठीक है नहीं करना है तो मध्यस्थ दर्शन की जरूरत नहीं है।

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद मानव को अनुभवमूलक प्रणाली पद्धति पर ध्यान दिलाता है। अनुभवमूलक विधि से ही मानव प्रमाणित होता है तथा नित्य सत्य को बोध व प्रमाणित करता है। मानव सदैव शुभाकाँक्षा सम्पन्न है ही, नित्य शुभ के रूप में अनुभव मूलक अभिव्यक्ति सम्प्रेषण का बोध कराता है। अनुभव ही एक मात्र तृप्ति स्थली है। अनुभवमूलक परम्परा ही अनुभवमूलक अभिव्यक्ति ही गरिमा महिमा होना सुस्पष्ट हो जाता है। अनुभव सर्वतोमुखी समाधान का स्रोत होने को स्पष्ट करता है। न्याय पूर्वक

मानव परम्परा में जीते हुए सर्वतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने की विधि विधान, कार्य व्यवहार, फल, परिणाम और प्रयोजनो को लय बद्ध विधि से बोध करा देता है। अतएव लोक संवाद में इस मुद्दे पर चर्चा सम्पन्न हो सकती है कि अनुभवमूलक विधि से जागृति प्रमाणित करना है या भ्रमित रहना है। अनुभवमूलक विधि से मानव चेतना सहज प्रमाण है और भ्रम पूर्वक जीव चेतना का प्रकाशन है।

सम्पूर्ण मानव परम्परा सदैव से तर्क का प्रयोग करता ही आया है। क्योंकि कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रतावश तर्क का उद्घाटन अपने आप में उद्गमित होता रहा। सम्पूर्ण उद्घाटन में मानव में समानता का आधार भी बना हुआ है। जैसे संख्या का पहचान सभी देश भाषा में एक ही सा है। एक दिन पहचानने का स्वर एक ही है। मानव जाति को पहचानने के स्थान पर जाति का नाम कुछ का कुछ दे रखा है। मानव धर्म को पहचानने के स्थान पर कुछ न कुछ नाम दे रखा है। मानव को ईश्वर को व्यापक रूप में पहचानना था उसके स्थान पर अपने अपने ढंग से कुछ न कुछ मान रखा है। मानव कुल सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना था, व्यवस्था के नाम पर कुछ न कुछ मनमानी करता है। मानव कुल सत्य को पहचानने की आवश्यकता पर सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व को पहचानना था उसके स्थान पर कुछ न कुछ मान रखा है। इस प्रकार बहुत सारे चीज सार्वभौम नहीं हो पाया, कुछ चीज सार्वभौम हुआ भी अर्थात सर्वमानव स्वीकृति एक सा है, जैसे धरती, परमाणु की स्वीकृति, पदार्थावस्था मृत, मणि, पाषाण, की स्वीकृति, अन्य वनस्पति की स्वीकृति, जीव संसार में विभिन्न जीवो की स्वीकृति, सर्वमानव में एक सा होना पाया जाता है। इसी प्रकार जल, वायु की स्वीकृति एक सा होना पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है, जिन मुद्दो पर सार्वभौमता नहीं हुई है, उन सभी मुद्दो पर पुनः विचार, परामर्श, विश्लेषण, विवेचना सहित सार्वभौम स्वीकृति के रूप में मानव स्वयं पा लेना अर्थात मानव कुल पा लेना सर्वशुभ के लिए आगे की कड़ी है।

अभी तक जितनी भी स्वीकृतियाँ भ्रम के आधार पर अथवा जागृति के आधार पर बन चुकी है, इनके मूल में शुभ की अपेक्षा, घोषणा, प्रयोग, प्रयास, अभ्यास व्यवहार कार्य किया जाना स्पष्ट है। यह सब प्रयोगो का नजीर रहते जिन-जिन मुद्दो में सार्वभौम स्वीकृति नहीं हो पाई है उसे स्वीकृति की एकरूपता में घटित करा लेने से ही समुदायिक फर-फंदे का उन्मूलन हो पायेगा। फरफंद का तात्पर्य भ्रमित मान्यता के आधार पर द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध तक पहुंचने का रास्ता से है। इसलिए सार्वभौम के ध्रुवो पर और

मानव कुल की अखंडता के ध्रुव पर, सम्पूर्ण अध्ययन पर, सार्वभौम स्वीकृति के रूप में, सार्वभौम स्वीकृति का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृति अथवा सम्पूर्ण देश, काल में होने वाली स्वीकृति से है, इसमें एकरूपता की आवश्यकता बनी रहती है। इस क्रम में मानव अपनी महिमा मंडित मर्यादा को पहचानना अवश्यंभावी है।

परिवार ही मूलत: सभा के रूप मे, सभा ही परिवार के रूप में वैभवित होता है। निर्णय लेने के रूप में सभा कहलाता है। क्रियान्वयन करने के रूप में परिवार कहलाता है। इस प्रकार परिवार और सभा अविभाज्य होना पाया जाता है । सभा में संवाद अवश्यंभावी है। जिसमें एक दूसरे की मानसिकता, प्रयोजन, फल, परिणाम का बोध होना पाया जाता है। फलस्वरूप हर निर्णय सर्वसम्मति के रूप में सार्थक होना पाया जाता है। सर्वसम्मतियाँ परिवार में ही हो पाती है । सभी मुद्दे समझदारी से शुरूआत होते हुए प्रमाणीकरण तक लम्बाई चौड़ाई होना पाया जाता है। मानवत्व सहज समझदारी का मूल रूप सहअस्तित्व है, प्रमाणीकरण का स्वरूप सहअस्तित्व है। इस प्रकार से प्रमाणीकरण और समझदारी की वस्तु एक ही हुई । इसी बीच सभी कड़ियाँ जुड़ी हुई है । इन सभी कड़ियों में सहअस्तित्व की खुशबू बहती ही रहती है। इसमें कोई अलग विशेष प्रयास का स्थान भी नहीं है। स्वभाव गति में सहअस्तित्व की धारा प्रमाण तक अर्थात मानव द्वारा प्रमाण तक और मानव द्वारा किया गया प्रमाण अस्तित्व रूपी सहअस्तित्व तक जुड़ा ही रहता है। यही अनुभव की महिमा है। ऐसे अनुभव की निरन्तरता रहना स्वाभाविक है। इसलिए मानव परम्परा में अनुभवमूलक विधि, व्यवस्था, संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम इन सभी कार्यो में सहअस्तित्व का नजरिया स्पष्ट होता ही रहता है। यही मानव कुल का परम वैभव है। यही स्वराज्य और स्वतंत्रता की महिमा है। इस पहलू पर जो मुद्दा है स्वराज्य और स्वतंत्रता को प्रमाणित करना है या नहीं, यह संवाद का मुद्दा हो सकता है। इसे मानव कुल निरीक्षण परीक्षण करेगा ही।

मानव कुल अपना सम्पूर्ण वैभव को प्रमाणित करने के रूप में प्रथम सोपान परिवार ही है। परिवार में जो कमी रह जाती है वह कहीं भी आपूर्ति नहीं हो पाती। परिवार में ही हर मानव शुद्ध रूप में अथवा संपूर्ण रूप में पहचान के योग्य है। परिवारजन परस्परता में जितने अच्छे तरीके से पहचान पाते है, परिवार के बाहर अथवा किसी दूसरे परिवार के व्यक्ति को उसके सम्पूर्ण आयाम कोण, दिशा, परिपेक्ष्यो, के संदर्भ मे ध्यान देना स्पष्ट होना जटिल हो ही जाता है। इसलिए हर मानव को अपने परिवार में जागृति का प्रमाण प्रस्तुत करना अभ्युदय का प्रमाण है। अभ्युदय का तात्पर्य भी सर्वतोमुखी समाधान से ही

है। इस विधि से मानव इस बात पर अपने को विश्वास स्थली के रूप में पहचान सकता है कि परिवार में समझदारी से मानसिकता, मानसिकता से कार्य व्यवहार, कार्य व्यवहार से फल परिणाम, फल परिणाम से समाधान समृद्धि प्रमाणित होने के अर्थ में परस्पर निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण करना प्रत्येक परिवार सदस्यो से बन पाता है। इस क्रम में मानव अपने वैभव के सम्पूर्ण स्वरूप को स्पष्ट किया ही रहता है। यही रहस्य मुक्त परिवार है। सकारात्मक पक्ष में समाधान समृद्धि पूर्ण परिवार है और अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करने योग्य परिवार है। इसे जागृत मानव परिवार के सौभाग्य के रूप में पहचानना हर व्यक्ति द्वारा जो अन्य जागृत पविार के सदस्य हैं सुगम हो जाता है इसे भली प्रकार से समझ चुके है। इसलिए विश्वास करते है कि हर मानव इसे समझते हुए अपने कार्य व्यवहारों को जागृति की कड़ी से जोड़ने का प्रयास एवं प्रमाण अवश्य ही करेगे।

भ्रमित संसार में भी हर व्यक्ति एक दूसरे की नसजाल को जानते ही है अथवा हर बात को पहचानते रहते है। भ्रमित मानव परिवार में हर व्यक्ति एक दूसरे के दोषो को भी पहचाने रहते है। ऐसे पहचानने के आधार पर एक दूसरे के प्रति विश्वास पूर्ण विधि नहीं बन पाती है। एक छत के तले अवश्य ही रहते है। इस दूभरता में घुटन बनी ही रहती है। परस्परता में अविश्वास बढ़ता जाता है। अविश्वास के कारण अपने अधिकारों को वस्तु केन्द्रित किये जाना एक विवशता बन जाती है। ऐसी विवशता एक दूसरे के बीच खाई का काम करती है। फलस्वरूप असन्तुष्टि का विस्तार होता ही जाता है। जितना ज्यादा असन्तुष्टि का विस्तार होता है उतना ही ज्यादा संग्रह सुविधा पर स्वामित्व को पाने का प्रयत्न होना पाया जाता है। फलस्वरूप व्यक्तिवादिता उभर जाती है। परिवार में सुखी होने के लिए जीने की शुरूवात करते है। इसके विपरीत व्यक्तिवादिता में पहुँच जाते है यही संपूर्ण समस्या का कारण है।

भ्रमवश अकेलापन सदा विरोध अथवा भय के स्वरूप में ही गण्य होता है। अकेलेपन से मुक्ति तभी हो पाती है जब परस्परता में विश्वास हो। कहीं न कहीं मानव अतिरिक्त विश्वास के लिए तड़पता है चाहे जीव जानवर के साथ ही क्यों न हो। इसकी कोई चिन्हित पहचान नहीं हो पाती है इसलिए बारंबार विश्वास का आधार बदलता है। और बदलते बदलते थकना भी कहीं हो जाता है। पुन: किसी अज्ञात व्यक्ति के साथ विश्वास सूत्र को जोड़ने का प्रयास भी करता है। मानव अपने में विरक्ति और भक्ति की मान्यता से साधनारत होना पाया जाता है। इसे कही अपने में सन्तुष्टि पाने के लिए साधना, अभ्यास, योग, चिन्तन, गायन, प्रार्थना, विलपने के क्रम में गुजर जाता है। गुजरते-गुजरते

थक जाना भी होता है। कोई आशित घटना अर्थात मनोकामना सफल होने की स्थिति में सिद्धि हो गया है मान लेते है। न होने की स्थिति में ज्ञान हो गया मान लेते है। पुन: सर्वाधिक ऐसे साधक किसी मानव के साथ अपनी पहचान को स्थापित करने में प्रयत्नशील होते हैं। ऐसे प्रयास में कोई-कोई काफी भीड़ इकट्ठा करने में सफल हो जाते है, जितना बड़ा भीड़ उतना बड़ा सिद्ध अथवा ज्ञानी माने जाते है। ऐसे ज्ञानी और सिद्धो की सूची बड़ी होते हुए भी मानव परम्परा भ्रमजाल में यथावत बनी हुई ही है। क्योंकि सर्वमानव में समझदारी सुलभ हुई नहीं है। मानव लक्ष्य जीवन लक्ष्य का प्रमाण लोकव्यापीकरण हुआ नहीं है। यही मुख्य मुद्दा है इसी विफलता के आधार पर सर्वभौम व्यवस्था अखंड समाज बना नहीं है। यही संकट आज के लिए समस्त प्रकार की समस्या का कारण है। इसी भ्रमवश हर मानव भय प्रलोभन और समस्याओ के लिए स्रोत बना हुआ है। इससे छूटने से ही मानव कुल का कल्याण है।

सर्वशुभ का स्वरूप हर मानव परिवार में प्रत्येक नर-नारी समझदारी से सम्पन्न होना एवं समाधान समृद्धि को प्रमाणित करना है। इस विधि से समृद्धि व्यवस्था का परिणाम है। व्यवस्था पूर्वक श्रम नियोजन, श्रम नियोजन पूर्वक उत्पादन, उत्पादन के आधार पर समृद्ध होना देखा गया है। इसी प्रकार से हर परिवार को प्रमाणित होना आवश्यक है। पहले मंजिल के रूप में हर परिवार ही अपने वैभव का प्रमाण है। इसका स्वरूप समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी, समाधान समृद्धि है।

इस क्रम से जीने, समझने, प्रमाणित होने के संयुक्त स्वरूप को परिवारमूलक स्वराज्य व्यवस्था नाम दिया है। व्यवस्था का द्वितीय सोपान परिवार समूह सभा है। इसमें 10 परिवार से निर्वाचित एक एक सदस्य एकत्रित होगें। एक दूसरे की पहचान जागृत परिवार विधि से सम्पन्न रहती ही है। इनमें नर नारी एक परिवार होते हैं। इनमें प्रतिबद्धता का स्वरूप यही रहेगा 10 परिवारों में सन्तुलन को बनाए रखना। 10 परिवार में सन्तुलन का मतलब 10 परिवारों की परस्परता में न्याय पूर्वक जीने की कला को उज्जवल बनाना। 10 परिवारों की परस्परता में पूरकता को बनाए रखना। ये दो प्रधान कार्य हैं। इसी क्रम में 10 परिवार में हस्त शिल्प, ग्राम शिल्प, कविता साहित्य, चित्रकला कृषि एवम कुटीर उद्योग में प्रोत्साहन बनाए रखना है। इनमें ऐसी कलाओं के निखरने के लिए उपायो को सोचना, संयोजित करना यह कार्यक्रम रहेगा। इस प्रकार 10 परिवारों का सौभाग्य का निखार हर दिन, महीना, वर्ष, श्रेष्ठता की ओर शोध होना स्वाभाविक रहेगा। यह दूसरे सोपान का वैभव हुआ। इस प्रकार के कार्य के फलन में दसो परिवारो का संयुक्त देन बनी

रहेगी। इसमें दसो व्यक्ति कार्यरत रहेगे सोचेंगे। हर आयुवर्ग के लिए परिवार सूत्रों से सूत्रित रहने का कार्यक्रम बनाए रखेगे। अपने अपने परिवार में समृद्धि के प्रमाण रूप में समाजगति के दूसरे सोपान सौभाग्य में भागीदारी करेगे।

दसो परिवार संस्कृति सभ्यता में एक रूपता को बनाए रखेंगे। कला और उत्पादन क्रियाओ के प्रोत्साहन से अपनी अपनी पहचान बनाए रखने में सतत स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होते जायेंगे। इस स्वायत्ता को पहचानने के उपरान्त सम्मिलित व्यवस्था दस परिवार में समाधान, समृद्धि का अनुभव होना, प्रमाणित होना, गवाहित होना बन जाता है। यही परिवार समूह सभा का वैभव होना पाया जाता है। इस वैभव के साथ यह भी स्वयं स्फूर्त होता है इसकी विशालता की आवश्यकता है। जैसे परिवार में परिवार समूह व्यवस्था की प्रवृति स्वयं स्फूर्त होती है। इसी प्रकार परिवार समूह सभा ग्राम परिवार की विशालता दस के गुणन में होते हुए ग्राम सौभाग्य को प्रमाणित करने का उद्देश्य बन जाता है। क्योकि समूचे ग्राम में कम से कम 10 परिवार समूह सभा से निर्वाचित सदस्य होगी। दस परिवार सभा अपना सौभाग्य प्रमाणित किये रहना स्वाभाविक रहता है। इन आधारो पर हर परिवार समूह सभा से एक एक व्यक्ति का निर्वाचन होना सहज हो जाता है। इस स्वयं स्फूर्त निर्वाचन से जन प्रतिनिधि अपने दायित्व, कर्तव्य से सम्पन्न, सजग प्रमाणित रहता ही है क्योंकि समझदार परिवार से ही जन प्रतिनिधि की उपलब्धि होना पाया जाता है। इसके हर परिवार के समझदार होने की व्यवस्था, लोक शिक्षा और शिक्षा विधि से, मानवीय शिक्षा का बोध कराने की व्यवस्था सुचालित रहेगी ही। इस प्रकार से तीसरे सोपान के लिए दस जनप्रतिनिधि परिवार समूह सभा से निर्वाचित होकर ग्राम सभा के लिए उपलब्ध रहेंगे। इसके निर्वाचन की कालावधि को हर ग्राम सभा अपनी अनुकूलता के आधार पर अथवा सबकी अनुकूलता के आधार पर निर्णय लेगी। उस कालावधि तक मूलत: परिवार से निर्वाचित होकर परिवार समूह से निर्वाचित होकर ग्राम परिवार सभा कार्यक्रम में भागीदारी करने के लिए पहुँचे रहते है। इनके लिए कोई मानदेय या वेतन स्वीकार नहीं होता है। क्योंकि हर परिवार समृद्ध रहता ही है। समाधान समद्धि के आधार पर ही जनप्रतिनिधि निर्वाचन होना पाया जाता है। जब दसो जनप्रतिनिधि एकत्रित होते है ये सभी प्रतिनिधि हर कार्य करने योग्य रहते हैं। व्यवस्था कार्य में ऐसा कोई भाग नहीं रहेगा जिसे यह कर नहीं पायेगे। दूसरा हर कार्य के लिए समय और प्रक्रिया को निर्धारित करने में समर्थ रहेगे। इस शोध के आधार पर मानवीय शिक्षा- संस्कार में पारंगत जैसे एक गॉव में प्राथमिक शिक्षा का आवश्यकता तो रहता ही है उसमें पारंगत रहेंगे। न्याय-सुरक्षा कार्य में पारंगत रहेंगे।

उत्पादन-कार्य में पारंगत रहेगे। विनिमय कार्य मे पारंगत रहेंगे। स्वास्थ्य संयम कार्य में भी पारंगत रहेंगे। प्राथमिक स्वास्थ्य विधा में सभी पारंगत रहेगे।

हर समझदार परिवार में स्वास्थ्य-संयम विधा में सामान्य चिकित्सा ज्ञान, शरीर रचना ज्ञान, शरीर सन्तुलन का ज्ञान सम्पन्न रहता ही है। इतना ज्ञान हर परिवार एवं जनप्रतिनिधि में रहता है। कर्माभ्यास किसी में कम ज्यादा हो सकता है। इस विधि से हर प्रतिनिधि की मानसिकता सबके साथ तालमेल बनाए रखने के सूत्र व्याख्या में निष्णात रहेगे। अतएव उक्त पांचो विधाओ में कृत, कारित, अनुमोदित कार्यो का अधिकार सम्पन्न रहते हैं। यही मौलिक अधिकार है। यही मानव अधिकार का प्रशस्त स्वरूप है। प्रशस्त स्वरूप का तात्पर्य पीढ़ी से पीढ़ी प्रेरणा पाने योग्य क्रियाकलाप, मानसिकता, ज्ञान, विज्ञान, विवेक सम्पन्न समझदारी है। ऐसे समझदार जनप्रतिनिधि अब दस परिवार समूह सभा और कम से कम सौ परिवारों के सम्मिलित सौभाग्य को प्रमाणित करने के लिए निष्ठान्वित हो जाते है। इन सौ परिवार में संस्कृति सभ्यता की समानता को वैभव के रूप में मूल्यांकित करेंगे। जहाँ कही भी अर्थात किसी परिवार अथवा परिवार समूह सभा में किसी श्रेष्ठता की आवश्यकता होने पर ग्राम समूह सभा के दसो प्रतिनिधि प्रेरक हो जाते हैं फलस्वरूप वांछित श्रेष्ठता उदय हो ही जाती है। इस प्रकार श्रेष्ठता और श्रेष्ठता का सम्मान प्रणाली अपने आप गतिशील हो जाती है। हर प्रतिनिधि मानवीयता पूर्ण आचरण में निष्ठान्वित रहेंगे। हर स्थिति में मानवीयता पूर्ण आचरण को प्रमाणित किये रहेंगे। यही प्रधान सूत्र है।.

शिक्षा-संस्कार की मूल वस्तु अक्षर आरंभ से चलकर सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान सम्पन्न होने तक क्रमिक शिक्षा पद्धति रहेगी। हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान बना ही रहेगा। गाँव के हर नर-नारी समझदार होने के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से प्राथमिक शिक्षा को सभी शिशुओ में अन्तस्थ करने का कार्य कोई भी कर पायेंगे। इस विधि से प्राथमिक शिक्षा के कार्य के लिए कोई अलग से वेतन या मानदेय की आवश्यकता नहीं रहती है। गाँव के हर नर-नारी शिक्षित करने का अधिकार सम्पन्न होगें।

दूसरे विधि से हर गाँव में प्राथमिक शिक्षा शाला के साथ हर अध्यापक के लिए एक निवास साथ में ग्राम शिल्प का एक कार्यशाला, हर अध्यापक के लिए 5-5 एकड़ की जमीन और 5-5 गाय की व्यवस्था रहेगी यह पूरे गाँव के संयोजन से सम्पन्न होगा। यह शाला, अभिभावक विद्याशाला के रूप में कार्यरत रहेगी। इस दोनो विधि से शिक्षा-संस्कार कार्य को पूरे गॉव में उज्जवल बनाने का कार्यक्रम सम्पन्न होगा। मानवीय शिक्षा

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद पर आधारित रहेगी। शिक्षा सहअस्तित्व दर्शन जीवन ज्ञान के रूप में प्रतिपादित होगी। इस प्रकार हम एक अच्छी स्थिति को पायेंगे। जिससे सहअस्तित्ववादी मानसिकता बचपन से ही स्थापित होने की व्यवस्था रहेगी।

व्यवस्था की दूसरी कड़ी में सुरक्षा कार्य सम्पन्न होगे। इसमें ग्राम परिवार सभा के लिए निर्वाचित दसो सदस्य सुस्पष्ट ज्ञान सम्पन्न, विवेचना, विश्लेषण में पारंगत रहेंगे। हर परिवार समझदार परिवार होने के आधार पर गलती और अपराध की कोई संभावना नहीं रहती। फिर भी ऐसी कोई प्रवृति उदय होने से घटना तक पहुंचने के पहले सुधार होने की व्यवस्था रहेगी। ऐसी व्यवस्था का प्रभावशीलन परिवार से ही आरम्भ होकर परिवार समूह, ग्राम परिवार सभा में कार्यरत निष्णात व्यक्तिगण सुधार के दायी रहेंगे। जो अनुचित है अनावश्यक है अथवा गलती अपराध है ऐसी मानसिकता को पहचानने का दायित्व सर्वप्रथम परिवार में उसके अनन्तर परिवार समूह सभा में और ग्राम परिवार में रहेगी। ग्राम के सम्पूर्ण सौ परिवार दायी रहेंगे। जैसे ही ऐसी मानसिकता देखने मिले तुरन्त सुधारने का कार्य करेंगे। और पूरा गाँव के सौ परिवारो का मूल्यांकन, वर्ष में एक बार अथवा छः महीने में एक बार, आवश्यकता पड़ने से महीने में एक बार होना स्वाभाविक रहेगी। इसकी सुगमता हर दस परिवार के प्रतिनिधि करेंगे। हर परिवार अपना मूल्यांकन स्वयं करेगा। इन दोनो आधार पर ग्राम सभा अपना ध्यान देकर मूल्यांकन की घोषणा करेगा। इनमें से कोई भी परिवार में श्रेष्ठता की आवश्यकता होने पर अथवा परिवार समूह में श्रेष्ठता की आवश्यकता होने पर ग्राम सभा उसकी भरपाई करने का कार्य करेंगे। मूल्यांकन का ध्रुव बिन्दु समाधान, समृद्धि सम्पन्नता होगा। तीसरा बिन्दु उपकार कार्य में प्रवर्तन समाज गति के रूप में मूल्यांकित होगी।

व्यवस्था की तीसरी कड़ी उत्पादन कार्य है। इन उत्पादन कार्यों में कृषि, पशु पालन, ग्राम शिल्प, हस्त कला की प्रधान रूप में पहचान रहेगी। इसी के साथ ग्राम उद्योग की संभावना रहेगी। ग्रामोद्योग में ऊर्जा संतुलन कार्य रहेगा। यह स्थानीय परिस्थिति के साथ ग्राम सभा निर्णय करेगी। उत्पादन कार्यों की जितनी भी श्रेष्ठतम क्रिया प्रक्रिया तकनीकी होगी वह सभी परिवार में समावेश रहेगी। साथ में यह भी प्रावधान रहेगा कि किसी एक परिवार में स्वयं स्फूर्त श्रेष्ठता होने की स्थिति में समूचे 100 परिवार में सुलभ कराने की व्यवस्था ग्राम सभा में निहित रहेगी। हर परिवार अपने में आगे का कोई श्रेष्ठ कार्य करने में सफल होता है उसे तत्काल ग्राम सभा के आवगाहन में लाने की स्वतंत्रता रहेगी।

गोबर गैस, सूर्य उर्जा, वायुतरंग और कचरा गैस इन सब से ईधन और प्रकाश की व्यवस्था और तकनीकी सहज सुलभ रहेगी। ग्राम सभा के जन प्रतिनिधि इस बात को तय करेगे गृह उद्योग, ग्राम शिल्प, स्थानीय सम्पदा के आधार पर क्या-क्या उद्योग हो सकते है इसकी सूची बनेगी। इसके लिए समुचित तकनीकी सुलभ कराने की व्यवस्था करेगे। हर समझदार परिवार श्रेष्ठता और गतिशीलता के साथ जुटा रहेगा। इसलिये हर श्रेष्ठता, गतिशीलता के स्रोत ग्राह्य रहना स्वाभाविक रहेगा। आरम्भिक चरण में हर परिवार को समझदार बनाना प्रधान कार्य रहेगा। गाँव के हर व्यक्ति के लिए न्याय सुलभ होने में भरोसा न्याय पूर्वक जीने में विश्वास बना रहना ही ग्राम स्वराज्य सफल होने का बिन्दु है। इसी आधार पर हर परिवार में उत्पादन कार्य स्वीकृत रहता है ही। उनके लिए ग्राम सभा जो कुछ भी प्रस्तावित करेगी स्वीकृत होती रहेगी। ग्राम सभा अपने में निष्ठा बनाए रखेगी। बाजार में जो चीज जितने पैसे का मिलता है उतने पैसे में यदि गाँव में तैयार होता है तो गांव में तैयार करने का निर्णय लेगी। क्योंकि गॉव में एक व्यक्ति के समुचित उत्पादन का प्रावधान हो जाता है। इसी विधि से आहार आवास अलंकार सम्बंधी वस्तुओ के प्रति नजरिया रहेगी। इसके अनन्तर सम्पूर्ण महत्वाकांक्षी वस्तुएँ जैसे दूर दर्शन, दूर गमन, दूर श्रवण सम्बंधी वस्तुओ को सहज संभालने के लिए सम्पूर्ण कर्माभ्यास करने की व्यवस्था रहेगी। इसके अनन्तर इनसे किसी वस्तु को निर्मित करने की सम्भावना गाँव की परिस्थिति में होने के आधार पर उन-उन वस्तुओ को निर्मित करने का कार्यक्रम गाँव में सम्पन्न होगा। कृषि में बीज स्वायत्ता, उर्वरक स्वायत्तता, कीटनाशक औषधियों की स्वायत्तता, पानी की स्वायत्तता बनी रहेगी। पानी की स्वायत्तता क्रम में अति आधुनिक विधि से हम जो पाताली जल स्रोत उपयोग करने में सफल हो गये है, इसकी पूरकता की विधियों को सोचना आवश्यक है। अभी तक चली संग्रह सुविधावादी विधि से इस ओर ध्यान नहीं गया अथवा कारगर विधि से ध्यान नहीं गया। अब समझदार ग्राम स्वराज्य व्यवस्था का इस ओर ध्यान देना स्वाभाविक है। अस्तु पाताली जल स्रोत जितना हम उपयोग करते है कम से कम तीन गुना, ज्यादा से ज्यादा चार गुना वर्षाकालीन पानी को संग्रह कर रखने की व्यवस्था हर कृषक अपनी जमीन में बनाए रखेगा। जिसमे से कुछ भाग उड़ जाता है, कुछ भाग जमीन पी जाती है जो पाताल जल स्रोत बन जाती है जिससे पाताल जल तादाद बने रहने का सूत्रपात हो सके। जिससे धरती की सतह पर जो वन, वनस्पति शेष है वे सुरक्षित रह सके। क्योंकि पाताल जल स्रोत जितना नीचे चला जायेगा। धरती की सतह का जल और जल स्रोत सूखने की संभावना रहेगी। वर्तमान में सर्वाधिक नदी नाले, तालाब, सरोवर सूखा हुआ देखने को मिलता है। सतह में वन, वनस्पति और औषधि, वनोपज प्रचुर मात्रा

में होने के लिए धरती की सतह के ऊपर पानी सर्वाधिक रहना आवश्यक है। तभी नदी नाला किनारा, कुँआ, तालाब, सरोवर ये सब भी पानी से भरपूर दिखाई पड़ेगे। जैसे ऋतु संतुलन और धरती के सन्तुलन की स्थिति में रहे आये हैं।

इस क्रम में हम अच्छी तरह से कृषि उत्पादन के साथ इमारती एवम जलाऊ लकड़ी का भी अपने खेतों में उपज लेना सहज है। हर समझदार कृषक को भूमि के सदुपयोग को अपनी पूरकता विधि से पहचानना बन जाता है। अतएव उत्पादन कार्य के सभी आयामों की संभावनाओं के आधार पर तकनीकी कर्म अभ्यास गाँव में स्थापित करने का अधिकार ग्राम सभा में बना रहेगा। कृषि के चारो स्वायत्ता के पक्ष हर ग्राम सभा सुलभ सार्थक बनाने का कार्य करेगी।

व्यवस्था की चौथी कड़ी हर परिवार में उत्पादन का एक कोष रहेगा। परिवार के उपयोग से अधिक जितने भी उत्पादन रहेंगे उनका विनिमय अड़ोस-पड़ोस में अर्थात ग्राम-समूह और ग्रामो में कर लेगी। इससे सामाग्री लाने और ले जाने की प्रक्रिया में काफी बचत हो जायेगी। जिससे ईंधन से लेकर श्रम तक, श्रम से लेकर यंत्रो तक बचत का प्रावधान है। इसे अच्छी तरह से समझदार परिवार का हर सदस्य समझ सकता है। परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन जितना भी रहेगा, वे सभी उत्पादनो को एक सम्मिलित कोष में एकत्रित किया जायेगा। यह कोष मूलत: वस्तुओं का ही कोष है। इसके साथ श्रम मूल्य का मूल्याँकन रहेगा। उसी के बराबर में हर गांव में कोषालयो के खाते में श्रम मूल्य के साथ प्रतीक मुद्रा का संख्या भी लिखकर रखी जायेगी। उसी के साथ हर परिवार को उसी ग्राम कोष से क्या-क्या वस्तुएँ समीचीन दिनो के लिए आवश्यक है वह सूची रहेगी। उसी कोष से अपेक्षित वस्तुओ को प्राप्त किया जायेगा। ग्राम विनिमय कोष से वस्तुएँ किसी दूसरे ग्राम कोष में जायेगी और दूसरी वाँछित वस्तुओं को लायेगी। तभी तक समीपस्थ बाजार में विक्रय कर आवश्यक वस्तुओ को क्रमवार लाने की व्यवस्था रहेगी। लाभ हानि मुक्त विधि से वस्तुओ को ग्राम के सभी व्यक्तियों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था रहेगी। इसी विनिमय कोष के कार्यक्रम में सभी प्रकार की आहार संबंधी वस्तुएँ यथा सब्जी, दूध, अनाज वगैरह तो रहेगी ही; कलात्मक जितनी भी उपज है, कृषि औजार, भारवाहन का औजार, गृहनिर्माण में उपयोगी वस्तुएँ, अलंकार संबंधी सभी उपज को कोषालय में एकत्रित किया जायेगा। कोषालय से बाजार में दूसरा स्वराज्य कोषालय में ले जाने की, ले आने की व्यवस्था ग्राम स्वराज्य सभा में रहेगी।

व्यवस्था की पॉचवी कड़ी स्वास्थ्य-संयम का मतलब मानसिक रूप में संतुलित

रहने का तौर तरीका, इसका ध्रुव बिन्दु स्वस्थ मानसिकता को सटीक प्रमाणित करने के रूप में पहचाना जाता है। जहाँ कहीं भी असंतुलन दिखने पर उसको संतुलित करने की व्यवस्था रहेगी। इसमें वन औषधियो का, घरेलू औषधियों का और बनी हुई औषधियों का उपयोग करना रहेगा। साथ में स्थानीय रूप में मिलने वाली औषधियों को निर्माण करने की व्यवस्था रहेगी। व्यायाम, आसन, प्राणायाम, खेल के रूप में सभी का स्वास्थ्य सन्तुलन की संभावना प्रावधानित रहेगा। उक्त प्रकार के पाँच कड़ियों के संचालन के लिए आवश्यक तंत्र के रूप में पाँच समितियों को मनोनीत किया जायेगा। यह अधिकार ग्राम सभा में निहित रहेगा। अब रहा समितियों में संख्या का प्रश्न, यह स्थानीय सभा के विचाराधीन रहेगा। मनोनीत सदस्य स्वायत्त परिवार के हो सकते हैं। उपकार विधि से ही पूरा ग्राम स्वराज्य व्यवस्था सम्पादित रहना समझदारी का प्रमाण है। यही ग्राम स्वराज्य वैभव का तृतीय सोपान है।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में चौथा सोपान ग्राम समूह सभा के रूप में प्रकट होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। क्योंकि केवल परिवार व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। सम्मिलित परिवार व्यवस्था आवश्यक है क्योंकि परिवार की सार्वभौमता सम्पूर्ण मानव के साथ जुड़ी हुई है। इसे प्रमाणित करने के लिए एक निश्चित क्रम आवश्यक है ही। चौथे सोपान में 10 ग्राम मोहल्ला परिवार सभाओ से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित होकर एक ग्राम समूह परिवार सभा को गठित होना स्वाभाविक है। ये सभी निर्वाचित सदस्य अपने में तृतीय सोपानीय कार्यक्रमों में पारंगत होते हुए चौथे सोपान में अपनी-अपनी भागीदारी की पहचान प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत हुए रहते है। इसमें दस गाँव के लिए शिक्षा संस्था रहेगी। पहले की तरह से दो विधियों से इसे क्रियान्वयन करना बन जाता है। स्वायत्त परिवार में से विद्वान नर नारी को भागीदारी करने का अवसर बना रहेगा। इसमें सामर्थ्यता की पहचान है। पढ़ाई लिखाई रहेगी समझदारी भी रहेगी और प्रतिभा की छः महिमाएँ प्रमाणित रहेगी। ऐसे कोई भी व्यक्ति के किये स्वयं स्फूर्त विधि से शिक्षा संस्था में उपकार के मानसिकता से कार्य करने के लिए अवसर रहेगा। दूसरे विधि से हर दस गाँव से अर्थात 1000-1000 परिवार के श्रम सहयोग से अथवा योगदान से अभिभावक विद्याशाला बनी रहेगी।

इस विद्या शाला में दस गाँव से विद्यार्थियों को पहुँचने के गतिशील साधन को ग्राम समूह सभा बनाए रखेगा। इन साधनो का उपार्जन 1000 परिवार के योगदान से बना

रहेगा। हर परिवार उपने श्रम नियोजन के फलस्वरूप उपार्जित किये (धन) गये में से प्रस्तुत किये गये अंशदान के फलस्वरूप विद्यालय सभी प्रकार से सम्पन्न हो पाता है। इसी ग्राम समूह परिवार से संचालित शिक्षा संस्थान में जो भागीदारी करते हैं यह अध्यापक, विद्वान, संस्कार कार्यों को, समारोहो को, उत्सवो को सम्पादित करने का कार्य करेंगे। जैसे जन्म उत्सव, नामकरण उत्सव, अक्षराभ्यास उत्सव, विवाह उत्सव आदि संस्कार कार्यो को सम्पन्न करायेंगे। जहाँ स्वतंत्र उत्सव, मूल्यांकन उत्सव, कार्यक्रम उत्सव को ग्राम परिवार सभा, ग्राम समूह परिवार सभा संचालित करेंगे। हर उत्सव में विद्यार्थियों और अध्यापको के प्रेरणादायी वक्तव्यों को प्रस्तुत करायेंगे। प्रेरणा का आधार समझदार होने, समझदारी के अनुसार ईमानदारी, ईमानदारी के अनुसार जिम्मेदारी रहेगी। जिम्मेदारी के अनुसार भागीदारी रहेगी। इसी मंतव्य को व्यक्त करने के लिए साहित्य का प्रस्तुतिकरण रहेगा। स्वास्थ्य संयम प्रेरणादायी प्रस्तुतियाँ स्वागतीय रहेगी। शोध अनुसंधान का स्वागत और मूल्यांकन करता रहेगा।

सर्वमानव अपने में शुभ चाहने वाला होने के आधार पर और सर्वमानव समझदार होने के आधार पर और सर्वमानव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर मूल्याँकन होता रहेगा। ग्राम समूह सभा में शिक्षा-संस्कार पहली कड़ी है, दूसरी कड़ी में न्याय-सुरक्षा कार्य संपन्न होना पाया जाता है। न्याय सुरक्षा कार्य में निष्णात व्यक्तित्व का इसके पूर्व की सोपानीय कार्यो के आधार पर पहचान हुआ रहता ही है। यह हर निर्वाचित व्यक्ति का साधारण रूप में पहचान होना स्वाभाविक है। पीछे कहे गये तीन सोपान में मानव न्याय जो अनसुलझा रह जाता है उसको सुलझाने के लिए ग्राम समूह सभा का महिमा मंडित कार्य रहेगा। यह 1000 परिवार के साथ न्याय दृष्टि को, सत्य दृष्टि को सजग बनाए रखने का अनुपम सौभाग्य है। इस विधि से न्याय सुरक्षा आश्वस्त होने का कार्यक्रम विस्तृत होना समझ में आता है। इसका मूल्याँकन हर ग्राम मौहल्ला सभा के माध्यम से क्रियान्वयन होना व्यवहारिक हो पाता है। ग्राम समूह सभा अपने न्याय सुरक्षा कार्य का समीक्षा और मूल्यांकन प्रक्रिया को सम्पादित करेगा। जिससे सभी मानव सन्तुष्ट रहने का गवाही अथवा प्रमाण तैयार होगा। यह मानव इतिहास का स्वर्णिम अध्याय होगा।

तीसरी कड़ी में उत्पादन कार्य एक महत्वपूर्ण भूमिका है ही। परिवार समूह सभा में प्रौद्योगिकी के पक्ष में जितनी भी जानकारी चाहिये उन सब में पारंगत रहना आवश्यक है।

ये दसों सदस्य ग्रामोद्योग, लघु उद्योग विधा में पारंगत रहेगें। जैसे वन खनिज की संतुलित व्यवस्था है। वैसे ग्राम उद्योग विधा में उद्योगों को स्थापित करेगें। जैसे पढ़ाई की सामग्री, अलंकार सम्बंधी सामग्री, गृह निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री, दूरगमन दूर दर्शन, दूरश्रवण सम्बंधी उपकरणो को निर्मित करने की व्यवस्था बनी रहेगी। ऐसा उत्पादन उन दस गाँव की आवश्यकता के अर्थ में रहेगा। इस उत्पादन कार्य में श्रम निवेश परस्पर दस गाँव के बीच ही बना रहेगा। इसका आदान प्रदान के लिए विनिमय कोष बनाना स्वाभाविक है। इस विनिमय कोष के साथ आदान-प्रदान का सम्बंध बनाए रखेगी। स्वास्थ्य संयम पाँचवी कड़ी है इस कड़ी में ग्राम सभा में जिसका स्वास्थ सुधार नहीं हो सका ऐसे लोगो के साथ लिए स्वास्थ्य-संयम केन्द्र रहेगा। प्राद्योगिकी कार्य से जितनी भी समाज गति के लिए साधन उपलब्ध हुए रहते है इसे हम समृद्ध कर रहे है ऐसे समृद्ध कोष से स्वास्थ्य केन्द्र को सम्पन्न बनाए रखने का केन्द्र कार्य करेगा। इस प्रकार स्वास्थ्य केन्द्र के लिए साधन भरपूर रहेगा।

पाँचवे सोपान में दस ग्राम समूह सभा से निर्वाचित दस सदस्य क्षेत्र परिवार सभा के रूप में पहचाने जायेगे। इसमें अनुभव की और भी मजबूती बनी रहेगी। समझदारी में परिपक्व होना स्वाभाविक है भागीदारी में गति और तीव्र होती जायेगी। इन ही सब सौभाग्य को एकत्रित होना क्षेत्र परिवार सभा अपने वैभव को प्रमाणित करने में समर्थ होगी।

बुनियादी तौर पर हर परिवार समझदार होने के आधार पर ही क्षेत्र परिवार सभा का वैभव भी प्रमाणित होने की संभावना बनी रहती है। हर मानव का उद्देश्य साम्य होने के आधार पर व्यवस्था सूत्र व्याख्या अपने आप स्पष्ट होती है। इसकी भी प्रथम कड़ी शिक्षा-संस्कार कार्यक्रम है। इन शिक्षा संस्कार कार्यो में यथावत एक विद्यालय रहेगा। इसके पहले की सीढ़ी में जो प्रौद्योगिकी बनी रहती है उसके योगदान पर उत्तर माध्यमिक शालाएँ और स्नातक शालाएँ क्रम विधि से कार्य करेगी। क्रम विधि का तात्पर्य हर इन्सान चाहे नारी हो, नर हो समझदार होने के लिए कार्य करेगा। समझदारी का किसी उँचाई इस क्षेत्र परिवार सभा के अन्तर्गत प्रमाणित होना स्वाभाविक है। ऐसे प्रमाण के लिए तमाम व्यक्ति प्रशिक्षित रहेगें। इसी कारणवश स्नातक पूर्व और स्नातक विद्यालय किसी क्षेत्र सभा के अन्तर्गत संचालित रहेगें। जिसमें मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की रोशनी में ज्ञान, विज्ञान, विवेक सम्पन्न विधि से हर विद्यार्थी की मानसिकता में स्थापित करने का कार्य

होगा। इसी क्रम में हर सभा के अधिकार में कुछ मझोले, बड़े प्रौद्योगिकी समायी रहेगी। इसके लिए बुनियादी रूप में आवश्यकीय सभी साधन क्षेत्र सभाओ के प्रौद्योगिकी सम्पदा से निर्मित किये रहेंगे। इस विधि से हर क्षेत्र परिवार सभा में मझोले और छोटे उद्योगो का उत्पादन प्रचुर होने की व्यवस्था रहेगी। प्रधानत: ये उद्योग आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन सम्बंधी यंत्रो को बनाने के कार्य में प्रवृत्त होगा। इसी सोपान में एक विनिमय कोष रहेगा जिसका सम्बंध इसके पहले के चारो सोपानो के विनिमय कोष से रहेगा।

पाँचवी कड़ी के रूप में स्वास्थ्य संयम होना पाया जाता है। इस क्रम में विविध प्रकार के व्यायामों की व्यवस्था रहेगी, साथ में एक बहुत अच्छा चिकित्सा केन्द्र बना रहेगा। जिसमें आकास्मिक घटनाग्रस्त, दुर्घटना ग्रस्त और असाध्य रोगो को शमन करने की व्यवस्था रहेगी। यह प्रौद्योगिकी के बलबूते पर सम्पन्न होगी। इसमें कार्यरत जितने भी विद्वान होगे, ये सब स्वयं स्फूर्त विधि से सेवा उपकार के रूप में चिकित्सा कार्य को सम्पन्न करेंगे। यह परिवार वैभव का अनुपम देन रहेगा। इन सभी कार्य व्यवहार के आधार पर क्षेत्र सभा का वैभव अति शोभा सम्पन्न, गरिमा सम्पन्न, प्रयोजन सम्पन्न विधि से होना पाया जायेगा।

छठवाँ सोपान मंडल परिवार सभा का गठन दस क्षेत्र सभाओ से निर्वाचित दस सदस्यो के संयुक्त रूप में प्रभावित होगा। इसमें भी यथावत पाँच कड़ियो के रूप में सम्पूर्ण कार्य सम्पादित होंगे। शिक्षा-संस्कार कार्य स्नातक व स्नातकोत्तर रूप में प्रभावित रहेगी। स्नातकोत्तर शिक्षा-संस्कार में जीवन ज्ञान सहअस्तित्व दर्शन में पारंगत बनाने की व्यवस्था रहेगी। इसी के साथ साथ अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का सम्पूर्ण तकनीकी विज्ञान विवेक कर्माभ्यास सम्पन्न कराना बना रहता है। ऐसी संस्था में कार्यरत सारे अध्यापक संस्कार कार्यो के लिए जहाँ-जहाँ जरूरत पड़े वहाँ-वहाँ पहुँचेगे और कार्य सम्पन्न कराने के दायी रहेगे। उत्सव सभा मूल्याँकन प्रक्रिया सब ग्राम सभा सम्पन्न करेगी।

दूसरी कड़ी में न्याय-सुरक्षा अपने में एक वैभवशाली कार्यक्रम होना स्वाभाविक रहेगा। पीछे की पांचो कड़ियों में कोई समस्या शेष रहने की स्थिति में इस सोपान के निष्णात व्यक्ति उसे समाधान करने के दायी रहेगे। न्याय-सुरक्षा एक बहुमूल्य कार्यक्रम है यही विश्वास का, अभयता का प्रधान कार्यक्रम है। पूरे मंडल का न्याय-सुरक्षा विधा में जागृत रहना मंडल सभा का अति प्रमुख कार्य रहेगा। मंडल परिवार सभा की जितनी भी

समितियाँ होती है सभी सोपानीय सभाओ का न्याय सुरक्षा विधा का पूर्ण चित्रण, समीक्षा, मूल्याँकन कार्य सम्पादित होगा साथ में प्रस्ताव भी रहेगा। हर सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी के लिए आगे सीढ़ी से पीछे सीढ़ी के लिए, न्याय-सुरक्षा का प्रस्ताव बना रहना यह मानव अधिकार है। इसके आधार पर ही व्यवहारान्वय और मूल्याँकन होना स्वाभाविक है। न्याय-सुरक्षा सहअस्तित्व वादी विधि से सम्पन्न होना पाया जाता है। इसके लिए दूसरी कोई विधि भी नहीं है। मानवत्व अथवा मानवीयता सहअस्तित्ववादी विधि से प्रमाणित हो पाती है।

इसकी तीसरी कड़ी उत्पादन कार्य रहेगी। यह बड़े-बड़े उद्योगो के सम्बंध में सोच विचार करेगी। लघु उद्योग, ग्राम उद्योग, कुटीर उद्योग ग्राम शिल्प के मूल द्रव्यो को तैयार करने के सम्बंध में रहेगी। दूर श्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन, के यंत्र उपकरणो को निर्मित करने के भी साधारण प्रयास रहेगी।

चौथी कड़ी में विनिमय कोष कार्य सम्पादित होगा। मंडल परिवार सभा कोष से ग्राम परिवार सभा कोष तक का सम्बंध यथावत बना रहेगा। इसी प्रकार दूर संचार विधि से सभी कड़ियो का सम्बंध एक दूसरे से जुड़ा रहेगा। इसलिए सभी सोपान का अनुभव सुलभ रहता त्त

पांचवी कड़ी में स्वास्थ्य संयम का प्रबंधन रहेगा। पूरे मंडल के असाध्य घटनाग्रस्त स्थितियों से उभरने के लिए उपाय बना रहेगा। हर मानव स्वस्थ होने की उम्मीदो को लेकर जीता है। इससे स्वास्थ्य संयम कार्यक्रम में यह भी समाहित रहेगा जिसमें स्वायत्त विधि से स्वास्थ्य को संभाले रहने के ज्ञान, उपाय, कर्माभ्यास कराने की व्यवस्था रहेगी। इस प्रकार पॉचो कड़ियो का कार्य यथावत चिन्हित रहेगा इसी प्रकार आगे की कड़ियो में भी रहेगी।

मंडल समूह परिवार सभा दस मंडल परिवार सभा में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित होकर मंडल समूह परिवार सभा के कर्णधार रहेगें। इसी क्रम में सभी प्रकार के कार्यकलापो को तथा पांचों कड़ियो के कार्यक्रमों को इस सातवीं सोपान में प्रमाणित करने का दायित्व रहेगा इसमें सम्पूर्ण मानव प्रयोजनो को स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना कार्यक्रम रहेगा। ऐसे मानव अधिकार परिवार सभा से ही प्रमाणरूप में वैभवित होते हुए शनै: शनै: पुष्ट होते हुए मंडल समूह परिवार सभा में मानव अधिकार का सम्पूर्ण वैभव स्पष्ट होने की व्यवस्था रहेगी। समान्यत: मानव अर्थात समझदार मानव शनै: शनै: दायित्व के साथ अपनी अर्हता

की विशालता को प्रमाणित करता ही जाता है। अपनी पहचान का आधार होना हर व्यक्ति पहचाने ही रहता है। समूचे अनुबंध समझदारी से व्यवस्था तक को प्रमाणित करने तक जुड़ा ही रहता है। प्रबंधन इन्ही तथ्यो में, से, के लिए होना स्वाभाविक है। समझदारी में परिपक्व व्यक्तियों का समावेश मंडल समूह सभा में होना स्वाभाविक है। ऐसे देव मानव दिव्य मानवता को प्रमाणित करते हुए दृढ़ता सम्पन्न विधि से शिक्षा विधा में शिक्षा-संस्कार कार्य को सम्पादित करते है।

शिक्षा-संस्कार एक प्रथम कड़ी है इसमें अति सूक्ष्मतम अध्ययन, शोध प्रबंधो को तैयार करने की व्यवस्था रहेगी। शोध प्रबंधो का मूल उद्देश्य मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को और मधुरिम सुलभ करना ही रहेगा। इसके लिए सारी सुविधाएँ जुटाने का कार्यक्रम मंडल समूह सभा बनाये रखेगा। इसका प्रबंधन मंडल सभा के जितने भी प्रौद्योगीकी रहेगी उसकी समृद्धि के आधार पर व्यवस्थित रहेगा। ऐसी व्यवस्था के तहत में और विशाल विशालतम रूप में व्यवस्था सूत्रों को सुगम बनाने का उपाय सदा-सदा शोध विधि से व्यवस्थापन रहेगा। ऐसे शोध कार्यो के लिए सामग्री मे सातो सीढ़ियों की गतिविधियाँ रहेगी इस प्रकार शोध प्रबंधन का स्रोत बनी रहेगी। ऐसे शोध प्रबंधन स्वाभाविक रूप में दसो सीढ़ी और पाँचो कड़ियो की समग्रता के साथ नजरिया बना रहेगा। इस विधि से मंडल समूह सभा की प्रथम कड़ी का लोक उपकारी और मानव उपकारी होने के रूप में प्रमाणित रहेगी। दूसरी कड़ी न्याय-सुरक्षा है। न्याय-सुरक्षा विधा में मंडल समूह परिवार सभा में पहुंचे हुए सभी विद्वान जागृत मानव कोटि के ही होंगे। जिनके अधिकार में न्याय सुरक्षा के लिए आवश्यकीय सभी दूर संचार उपलब्ध रहेगा ही। फलस्वरूप दस मंडलों में न्याय सुरक्षा विधा से जुड़कर न्याय सुरक्षा की स्थिति गति का पूरा आँकलन बना ही रहेगा। इसमे से मंडल परिवार सभा में कार्यरत न्याय सुरक्षा कार्य में कोई समस्या हो उसे पूर्णतया समाधान प्रस्तुत करने का कार्य करेगा। प्रधान रूप से पाँचो कड़ियो में एक तारतम्यता किये रहेगे। हर विद्वान जो परिवार सभा में भागीदारी करने के लिए प्रस्तुत होते है वे सब स्वायत्त परिवार के प्रतिनिधि के रूप में रहेगे। जहाँ तक दूर संचार तंत्र रहेगी वह सब मंडल समूह परिवार सभा के स्वायत्त में रहेगी। इसका प्रावधानीकरण मंडल परिवार सभा में कार्यरत या संचालित उत्पादन कार्य के चलते सम्पन्न हुआ रहना पाया जाता है। इस क्रम में मंडल समूह परिवार सभा अपना पहचान सदा सदा के लिए बनाने का कार्य करेगा। मंडल समूह परिवार सभा में जितने भी न्याय सुरक्षा के

दस मंडल से प्रस्तुत होता है यह सब को समाधानित करेंगे।

तीसरी कड़ी उत्पादन कार्य होगी बड़े उद्योगो को यह परिवार सभा संचालित करेगी। जिससे सभी मंडलो की आवश्यकता पूरी होती रहे। जिससे गाँव-गाँव के लिए यान वाहन सब उपलब्ध हो सके। इसी क्रम में उत्पादन कार्य में शोध कर्माभ्यास की व्यवस्था बनी रहेगी। वर्तमान से आगे श्रेष्ठतम यान वाहन, दूर संचार तंत्र सम्बंधी यंत्रो को, उपकरणो को तैयार करने का कार्य करने के रूप में पहचाना जायेगा। जिससे देश धरती की आवश्यकता पूरी होती रहे। तकनीकी प्रक्रिया में जो मंडल समूह सभा अपने में श्रेष्ठता को पहचाने जायेगे उसे सभी सोपनीय सभाओ के लिए प्रस्तुत किये रहेगे। इसी प्रकार तकनीकी कर्माभ्यास का लोकव्यापीकरण करने की संभावना बनाए रखेगे।

चौथी कड़ी विनिमय कार्य के बाबत है। जो उत्पादन हुआ रहता है उसे विनिमय कोष में संग्रह किये रहेंगे। इसके बावजूद ग्राम परिवार सभा से सभी सोपानो में संचालित विनिमय कोष अनुबंधित रहेंगे। यह अनुबंधन अपने आप में सदा-सदा के लिए अर्थात पीढ़ी से पीढ़ी के लिए प्रशस्त और अनुकूल होने के रूप में उत्पादन कार्य को साज सजावट गुणवत्ता से परिपूर्ण विपुल मात्रा में उपलब्ध कराने की व्यवस्था किये रहेगें। सभी सोपानो के श्रम मूल्य के आधार पर, उपयोगिता के आधार पर वस्तु मूल्य, वस्तु मूल्य के आधार पर श्रम मूल्य का निर्धारण, मूल्यांकन, पहचान होता ही रहेगा इस विधि से श्रम मूल्य के आधार पर आदान प्रदान सुगम होना पाया जाता है।

पांचवी कड़ी स्वास्थ्य संयम होना स्वाभाविक है। स्वास्थ्य संयम के लिए शोध और कार्माभ्यास की व्यवस्था रहेगी। आवश्यकतानुसार शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था रहेगी। घटनाग्रस्त दुर्घटनाग्रस्त असाध्य रोगियों की चिकित्सा कार्य सम्पन्न होने की व्यवस्था बनी रहेगी। यह ग्राम परिवार से संचालित स्वास्थ्य संयम समिति से अनुबंधित रहेगी। इस ढंग से पांचो कार्य समितियाँ सभी सोपानीय कार्य समितियों से सम्बन्धित रहेगें। और आवश्यकता अनुसार लेन-देन के लिए अनुबंधित रहेगें।

आठवीं सोपान में मुख्य राज्य सभा होगी। जिसके लिए मंडल समूह सभा से एक एक निर्वाचित सदस्य रहेगे। जिनके आधार पर समूचे कार्यकलाप सम्पन्न होगे। जिसमें पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार कार्य की गतिविधियों में सर्वोत्कृष्ट समाज गति, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट न्याय-सुरक्षा कार्य, सर्वोत्कृष्ट उत्पादन कार्य, सर्वोत्कृष्ट विनिमय कार्य गति और सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य-संयम का शोध संयुक्त रूप में होता रहेगा। ये सभी सोपानीय परिवार सभाओ के लिए प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत होती रहेगी। इस विधि से अपनी

गरिमा सम्पन्न शिक्षण कार्य, कर्माभ्यास पूर्ण कार्यक्रम को सम्पन्न करता रहेगा।

दूसरी कड़ी न्याय-सुरक्षा यथावत रहेगी विशेषकर परस्पर सीढ़ियो के बीच विसंगतियों को समाधानित करती रहेगी। राज्य सुरक्षा के सम्बन्ध में शोध कार्य सम्पन्न होता रहेगा। ग्राम सुरक्षा से मुख्य राज्य सुरक्षा तक एक मधुरिम एक सूत्र विधियों को जाँचते रहेंगे। इन में मजबूती को बनाते रहेगे। साथ में मार्गदर्शन सभी सोपानो के साथ आदान प्रदान विधि से सम्पन्न होता रहेगा।

तीसरी कड़ी अपने आप में उत्पादन कार्य की रहेगी इसमें बड़े उद्योग समाहित रहेंगे प्रत्येक मुख्य राज्य में यातायात जैसे रेल सम्बंधी उपकरणो को प्राप्त करने का कार्यक्रम बना रहेगा। हर मुख्य राज्य परिवार सभा में इसकी परिपुष्टता को बनाये रखने की व्यवस्था रहेगी। जैसे बड़े बड़े वाहन इनको बनाने की प्रौद्योगिकी बनी रहेगी। इस क्रम में प्रत्येक राज्य सभा अपने में समृद्ध होने की व्यवस्था बनी रहेगी।

चौथी कड़ी विनिमय कोष होगी इसका आदान-प्रदान विनिमय कार्य को मुख्य राज्य परिवार सभा सम्पन्न करेगी। इसमें सभी आदान-प्रदान व्यवस्था विनिमय प्रक्रिया में ही समाहित रहेगी। इसमें सन्तुष्टि बिन्दु यही है कि सर्वाधिक उत्पादन हो जो आवश्यकता से अधिक हो, आवश्यकता का आंकलन सभी सोपानीय व्यवस्था में संबंध अनुबंध से पहचानने की व्यवस्था रहेगी।

पांचवी कड़ी स्वास्थ्य-संयम रहेगी प्रधान रूप में प्रौद्योगिकी में कार्य करने वालो के लिए बना ही रहेगा। उनके साथ अन्य सभाओ के द्वारा आये हुए स्वास्थ्य संयम समस्या ग्रस्त व्यक्तियों को राहत प्रदान करेगी। स्वास्थ्य संयम कार्यक्रम का पूरे परिवार के सम्मिलित कार्यक्रम को साधनो की पूर्ति उत्पादन कार्यो से सम्पन्न होने की व्यवस्था रहेगी। इस क्रम में सम्पूर्ण व्यवस्था का वैभव मानव के लिए अतिप्रयोजनशील होना देखा गया है एवं समझ में आता है।

नवें सोपान में प्रधान राज्य सभा होगी यह दस निर्वाचित सदस्यों से गठित होगी। यह दस सदस्य दस मुख्य राज्य परिवार सभा में कार्यरत दस-दस सदस्यो में से एक-एक व्यक्ति निर्वाचित किये जाने की विधि से उपलब्ध रहेगी। इसमें ऐसे पारंगत विद्वान होने के आधार पर प्रधान राज्य सभा का गठन गरिमामय होना स्वाभाविक है। इस सभा गठन कार्य के लिए जितने भी साधनो की आवश्यकता रहती है दस मुख्य राज्य सभाओं के द्वारा संचालित उद्योगो के आधार पर प्रावधानित रहेगी। ये सभी प्रावधान अपने आप में

लोकार्पण विधि से संपादित रहेगी। दूरसंचार व्यवस्था भी इन्ही स्त्रोतो से समावेशित रहेगी। फलस्वरूप प्रधान राज्य सभा की गति सुस्पष्ट रहेगी अथवा आवश्यकता अनुसार रहेगी।

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा-संस्कार ही रहेगी। प्रधान राज्य परिवार सभा से संचालित शिक्षा समूचे दसो मुख्य राज्यो की संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था की सार्थकता और समग्र व्यवस्था की सार्थकता के आँकलन पर आधारित श्रेष्ठता और श्रेष्ठता के लिए अनुसंधान, शोध, शिक्षण, प्रशिक्षण, कर्माभ्यासपूर्वक रहेगी। प्रौद्योगिकी विधा का कर्माभ्यास प्रधान रहेगा। व्यवहार अभ्यास प्रक्रिया में प्रमाणीकरण प्रधान रहेगा। इस प्रकार यह उन सभी जनप्रतिनिधियो के लिए प्रेरणादायी शिक्षा व्यवस्था रहेगी और लोकव्यापीकरण करने के नजरिये से चित्रित करने की प्रवृत्ति रहेगी। इसी मानवीय शिक्षा कार्यक्रम में साहित्य कला की श्रेष्ठता के संबंध में प्रयोजन के अर्थ में मूल्यांकन रहेगी। श्रेष्ठता प्रबंध, निबंध, कला प्रदर्शन, साहित्य, मूर्ति कला, चित्रकलाओं के आधार पर मूल्यांकन और सम्मान करने की व्यवस्था रहेगी।

इस सभा की दूसरी कड़ी न्याय- सुरक्षा कार्य रहेगी इसे पड़ोसी राज्यो में अर्थात परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को पड़ोसी राज्यो मे प्रवाहित करने के लिए सभी उपायो का प्रयोग करेगी। इस विधि से लोकव्यापीकरण प्रवृत्ति का प्रमाण प्रधान राज्य सभा के दायित्व मे रहेगी।

इस सभा की तीसरी कड़ी उत्पादन कार्य रहेगी जो आकाश गमन आदि यंत्रो को तैयार करने की प्रौद्योगिकी बनाये रखेगी। साथ में जलप्रवाह बल से विद्युत उपार्जन कार्य सम्पादित करने की व्यवस्था और दायित्व रहेगी। इसी के साथ साथ वायु प्रवाह, समुद्र तरंग विधियों से भी विद्युत उपार्जन करने के उपक्रम समावेशित रहेगें। इसी प्रौद्योगिकी कार्यक्रम के साथ और श्रेष्ठतर उपलब्धियो के लिए प्रयोगशील रहने के अधिकार समावेशित रहेगे जिससे ऊर्जा संतुलन सुलभ हो।

इस समिति की चौथी कड़ी विनिमय कोष रहेगी। विनिमय कोष के अधिकार सम्पूर्ण यंत्र उपकरणो का संग्रह उनका विधिवत विनिमय करने का अधिकार रहेगा। इसी कोष के चलते और प्रगतिशीलता को पहचानने की अनुसंधान, शोध अवश्य सम्पादित होती रहेगी।

इस सभा की पॉचवी कड़ी स्वास्थ्य संयम होगी। इसमें प्रौद्योगिकी में कार्यरत व्यक्तियों की चिकित्सा सम्पन्न होगा। इसके अतिरिक्त किसी भी सोपानीय प्रस्तुत कोई

घटनाग्रस्त समस्या को और असाध्य रोगो को समाधानित करने का प्रबंधन रहेगा। इसी प्रकार प्रधान राज्य सभा का वैभव सार्थक होने का स्वरूप स्पष्ट होता है।

दसवीं सोपान विश्व परिवार राज्य सभा है। सभी प्रधान राज्य सभाएं निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रस्तुत किए रहते हैं। ऐसे दस प्रतिनिधि विश्व राज्य सभा में होंगे। इस कार्य में इस धरती पर आज की स्थिति में दस प्रधान राज्य सभा होना संभव नहीं है। इसलिए मंडल समूह या मुख्य राज्य सभाएँ जो और सदस्यो को देना चाहते हैं उनसे दस का पूरा खाका बना लेना होगा। विश्व राज्य सभायें दस जन प्रतिनिधि कार्य संचालन करेंगे।

इस सभा की पहली कड़ी शिक्षा संस्कार कार्य रहेगी। शिक्षा संस्कार कार्य में प्राकृतिक संतुलन, (उद्योंग वन व खनिज) जीव संतुलन, मानव न्याय संतुलन का कार्य सम्पादित होगा। साथ में जलवायु संतुलन, ऋतु संतुलन, धरती का संतुलन, वन खनिज का संतुलन सम्बंधी अध्ययन करने की व्यवस्था रहेगी। ऐसे अध्ययन के लिए किसी भी सोपानीय सभा के सीमा में किसी भी व्यक्ति को भेज सकते हैं विद्वान बना सकते हैं और लोकव्यापीकरण के लिए प्रावधानित कर सकते है।

इस सभा की दूसरी कड़ी न्याय सुरक्षा है। न्याय सुरक्षा में सर्वाधिक रूप में मानव न्याय अथवा समाज न्याय, लोककल्याण कार्यो में श्रेष्ठता गति और सन्तुष्टि का आँकलन करना रहेगा। उसमें से किसी भी श्रेष्ठता की, गति की आवश्यकता है उसके लिए समुचित मार्गदर्शन करना इस सभा का अधिकार रहेगा। इसी के साथ साथ प्राकृतिक संतुलन, जीव संतुलन, वनस्पति संतुलन, खनिज संतुलन, ऋतु संतुलन के सम्बंध में समुचित मार्गदर्शन को प्रस्तुत करना, अध्ययन योग्य विधि से स्वस्थ रखने के लिए सर्वाधिक ध्यान देना उसके लिए समुचित मार्गदर्शन अध्ययन विधि से प्रस्तुत करना रहेगा।

इस सभा की तीसरी कड़ी उत्पादन-कार्य है। उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता का मूल्याँकन करना सभी सोपानीय उत्पादनो के सम्बन्ध में पूर्णतया सजग रहना सन्तुलन वस्तु उत्पादन के लिए प्रधान राज्य सभाओ का मार्ग दर्शन देना बना रहेगा। इस सभा के सम्पूर्ण साधनो को मुख्य राज्य सभाओ के जो मुख्य प्रौद्योगिकी रहेगी उसी के बलबूते पर पूरा साधन एकत्रित रहेगा। साधनो के सदुपयोग का चित्रण, प्रेरणा देने का अधिकार इस सभा मे निहित रहेगा। आरंभिक स्थिति में आवश्यक समझने पर सामरिक तंत्रो का उत्पादन प्रौद्योगिकीय विधि से विश्व राज्य सभा में रहेगा। उसके लिए स्रोत सभी प्रधान राज्य सभाएँ है। सभी आवश्यक तकनीकी प्रचलित हो चुकी है। इस

विश्व राज्य सभा में एक विश्व सुरक्षा समिति बनी रहेगी। इसमे सभी प्रधान राज्य सभा के एक एक प्रतिनिधि निर्वाचित विधि से प्रस्तुत रहेगे।

जहाँ तक सामरिक तंत्र के लिए आवश्यक है इसकी आवश्यकता तब तक रहेगी जब तक परस्पर राज्यो में पूर्ण विश्वास एकरूपता का सेतु न बन जाये। इस विधा में निश्चयन यही है समझदारी के साथ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सार्थक रहेगी। थोड़े दिन उपरान्त मानव कुल मे सामरिक उत्पादन सर्वथा अयोग्य सिद्ध होकर रहेगा।

यह भी एक परिकल्पना मानव कुल कर सकता है कि दूसरे किसी पृथ्वी से इस पृथ्वी पर आक्रमण करने का भ्रम हो सकता है। इसमें कही भी मानव हो, शनैः शनैः जागृत होते हुए जागृतिपूर्ण विधि से समग्र व्यवस्था को पहचानने का मुहूर्त हर पृथ्वी पर उदय होता ही है। क्योंकि पूरी प्रक्रिया इस धरती पर जैसी गुजर चुकी है उसे देखने पर अनुमान यही होता है किसी पृथ्वी पर भिन्न जलवायु मे मानव कुल का विस्तार होते-होते पूरी उस पृथ्वी का ज्ञान होना उसका भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी स्वरूप समझ मे आना विभिन्न जलवायु से दूरसंचार जुड़ना, ये सब शनैः शनैः गतिशील सोच-विचार का परिणाम होता रहेगा। ऐसी संभावना के चलते अन्ततोगत्वा जागृति पूर्ण विधि को तलाशना होता है।

जागृति पूर्ण विधि को तलाशने के उपरान्त सदा-सदा से बनी हुई इतिहास जुड़ी हुई मिलती है और जागृति के उपरान्त व्यवस्था का सूझबूझ होना मानव कुल की ही प्रतिष्ठा है। मानसिकता के आधार पर जागृति को विकसित करने वाला, पहचानने, जानने, मानने, प्रमाणित करने वाला एक मात्र मानव ही है।

हर जलवायु में विभिन्न प्रकार के आदमी होते है अर्थात मानव शरीर का रचना विभिन्न नस्ल, रंग, रूप का होता है। यह बात इसी धरती पर गवाहित हो चुकी है। इसी प्रकार अन्य धरती पर भी हो सकती है। जागृति की महिमा सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज का प्रमाण किसी अन्य धरती अथवा अनंत धरती में भी मानव का उदय हो चुका हो, उन सबका स्वरूप एक ही हो जाता है यानि मानसिक स्वरूप, क्योंकि उद्देश्य एक ही बनता है। दृष्टा कर्ता भोक्ता पद निश्चित हो जाता है। इन तथ्यो से हमे विदित होता है हम मानव लक्ष्य सम्पन्न विधि से जीने के लिए जागृति एक मात्र सहारा है। मानव जागृति सहित सहअस्तित्व रूप में नित्य वर्तमान है ही। वर्तमानता सदा-सदा के लिए नित्य है। इस विधि से हम सर्वशुभ कल्पना, परिकल्पना और प्रमाण तक की स्थिति मे आते है कि परिवार मूलक स्वराज्य विधि से विश्व मानव परिवार सभा को अभी तक वैभवित न होते

हुए, वैभवित होने की संभावना मानव मन तक पहुंचता है। सम्भावना तक स्वीकृति होती है। आगे मानव की चाहत बलवती होने की स्थिति मे व्यवहार मे वर्तमान हो सकता है यही आवश्यकता हर मानव मे विद्यमान है।

चौथी कड़ी विनिमय कोष है विश्व राज्य परिवार सभा मे विनिमय के लिए कोई खास वस्तुएँ नहीं रह जाते है। आवश्यकता महसूस होने की स्थिति मे विश्व मानव के लिए उपयोगी वस्तु को प्रस्तुत करेगा। इसकी सम्भावना दूरगमन, दूरदर्शन, दूरश्रवण सम्बन्धी वस्तुओ मे परिष्कृति और गति हो सकती है। विश्व मानव परिवार सभा की गरिमा के अनुसार ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा संतुलन सम्बन्धी औजारो के ऊपर ध्यान देने की आवश्यकता है। विद्युत ऊर्जा, विकरणीय ऊर्जा यह दो प्रकार की ऊर्जाएँ अति महत्वपूर्ण है इनमे से विकरणीय ऊर्जा पर संतुलन का नजरिया विश्व मानव परिवार सभा मे सुस्पष्ट रहने की आवश्यकता है। इसको कारगर बनाए रखना अर्थात सर्वसुलभ करने योग्य ज्ञान विवेक विज्ञान कर्माभ्यास सम्पन्नता को बनाए रखना है किसी भी सोपानीय आवश्यकता पड़ने पर शिक्षा शिक्षण की कर्माभ्यास की व्यवस्था को बनाए रखेगे। यही विनिमय का प्रधान स्वरूप रहेगा। यह विश्व मानव परिवार सभा का महिमा मंडित स्थितियो के लिए अनुकूल है।

पांचवी कड़ी स्वास्थ्य संयम ही होता है। इस अंतिम सोपान में सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ्य संयम मे स्वायत्त रहने के लिए सर्वोत्कृष्ट विधियों को शोध पूर्वक कर्माभ्यास किए रहना आवश्यक है महिमा अनुसार अपेक्षा भी मानव कुल मे होना स्वाभाविक है। इस आधार पर ऐसी स्थिति मे जो अनुसंधान होगा विश्व मानव के लिए उपकार में रहेगा। इस प्रकार विश्व मानव परिवार सभा मे सर्वोत्कृष्ट स्वास्थ का नजीर बना ही रहेगा यह लोकव्यापीकरण होने की व्यवस्था बनी रहेगी।

उक्त प्रकार से दस सोपानीय पाँच-पाँच कड़ियो पर सुसंगठित रहना सामान्य नजरिया से समझ मे आता है। इस सुसंगठन का तालमेल दूरसंचार विधि से एक दूसरे कड़ियो के साथ अनुप्राणित प्रतिप्राणित रहेगा। अनुप्राणित का तात्पर्य अनुक्रम से प्रेरणाएँ सूचनाएँ पहुंच पाना, सत्यताएँ सूचित हो पाना। प्रतिप्राणित का तात्पर्य प्राप्त सूचना के अनुसार अपेक्षित परिणामो से अवगत होना। ऐसी अनुप्राणित प्रतिप्राणित क्रियाएँ ग्राम परिवार राज्य सभा से विश्व परिवार सभा तक, विश्व परिवार सभा से ग्राम मोहल्ला परिवार सभा तक वर्तने की व्यवस्था बनी रहेगी।

इस विधि से हम मानव सामुदायिक मानसिकता से ओढ़े हुए सारी अपराधिक

प्रवृत्तियों से मुक्त हो सकते हैं। सामुदायिक चेतना विधि से ही द्रोह-विद्रोह शोषण युक्त प्रचलन जैसे अभिशाप, प्रदूषण जैसे अभिशाप इन दोनों से उबर सकते हैं। फलस्वरूप मिलावट जैसे अभिशाप, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार जैसे अभिशापों से मुक्त हो पाते हैं। संग्रह-सुविधा-भोग-अतिभोग की मानसिकता से परिवर्तित होकर जागृत होकर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व उपयोग-सदुपयोग प्रयोजनशील होने के प्रमाणो को मानवकुल प्रमाणित कर सकता है। यही शांति पूर्ण, समाधान पूर्ण जिन्दगी का प्रमाण है।

अध्याय ४

जनचर्चा की आवश्यकता

जनचर्चा की आवश्यकता

मानव अपने में कल्पनाशील, कर्म स्वतंत्र होने व बोलने के तरीको को, भाषा स्वरूप दिया हुआ, के रूप में प्रमाणित है। हर भाषा में किसी न किसी वस्तु का नाम परस्परता में होने वाली क्रिया-फल-परिणामों का नामकरण हो पाता है। प्रकारान्तर से हर मानव किसी न किसी भाषा में अस्तित्व में ही किसी न किसी वस्तु फल-परिणाम घटना का नाम जानता ही है। उसी के साथ क्रिया प्रक्रियाओ का नाम है सूझ-बूझ का भी नाम है। नाम का उच्चारण ही बन चुका है। साथ में यह भी देखा गया है कि गूँगा भी बातचीत करना चाहता है इसका भी अभ्यास मानव ने कर लिया। इस प्रकार मानव भाषा सम्पन्न है।

भाषा में जितने भी शब्दो को प्रयोजित करते है कारणवादी, गुणवादी, गणितवादी रूप में वर्गीकृत होता है। इसके मूल में रूप गुण स्वभाव धर्म का नाम समाहित रहता है। मानव मानव की परस्परता में चर्चा संवाद करता है। जिसे सामान्य भाषा में बातचीत कहते है। संवाद के बिना आदमी की अभिव्यक्ति अधूरी है। अतएव मानव हर अवस्था से अपने और आगे अवस्था के लिए संवाद आवश्यक है। जागृतिपूर्ण होने के उपरान्त भी उसकी निरन्तरता के लिए संवाद बना ही रहेगा।

जनचर्चा ही शिक्षा-संस्कार का शिलान्यास/ वातावरण का सूत्र :

मानव अपनी परस्परता में संवाद विधि से तथ्यो को जानने, मानने, पहचानने के आशय का प्रयोग करता है। सर्वमानव में इसकी आवश्यकता रहती ही है। तथ्य अपने में सहअस्तित्व सहज ही होता है। सहअस्तित्व से मुक्त तथ्य को प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए सहअस्तित्व में पूर्ण तथ्य विद्यमान है। इस विधि से हम मानव तथ्यान्वेषी होना प्रमाणित होते हैं। तथ्य पूर्ण स्वरूप मानव में सहअस्तित्व पूर्ण नजरिया और जागृति का प्रमाण ही है। जागृति का प्रमाण सर्वमानव में स्वीकृत है। सहअस्तित्व पूर्ण नजरियें में ध्रुवीकरण होना शेष रहा इसे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद ने प्रस्तावित कर दिया है। अध्ययनपूर्वक सुस्पष्ट होने की सम्पूर्ण ज्ञान मीमांसा कर्म मीमांसा और व्यवस्था मीमांसा को स्पष्ट कर दिया है। सुदूर विगत से ज्ञान मीमांसा, कर्म मीमांसा का पक्षधर रहा है। ये दोनो प्रतिपादन रहस्य से मुक्त नहीं हो पाए हैं। विगत प्रयास के अनुसार वर्तमान में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्वाद के अनुसार स्पष्ट हो जाता है इसे हर मानव जाँच परख सकता है

कर्माभ्यास पूर्वक प्रमाणित कर सकता है।

हर मानव संवाद के लिए इच्छुक है संवाद में परस्पर भरोसा करना भी आवश्यकता है। भरोसा इस बात का है कि संवाद से हम निश्चित ठौर तक पहुँच पाते हैं। यह परस्पर मानव में व्यक्तित्व पर निर्भर रहता है। व्यक्तित्व आहार विहार व्यवहार के रूप में पहचानने में आता है। इस क्रम में मानव द्वारा एक दूसरे को पहचानने का अभ्यास सर्वाधिक रूप में सार्थक हो चुका है। अर्थात हर मानव में अपने अपने तरीके से जाँचने की विधि बन चुकी है यह मानव कुल के उत्थान की एक यथा स्थिति है। यह यथा स्थिति स्वयं आगे की यथा स्थिति के लिए आधार है ही। इसलिए मानव संवाद पूर्वक ही यथा स्थिति तक, सत्यता तक, यथार्थता तक, वास्तविकता तक पहुँच पाता है। पहुँच पाने का मतलब स्वीकृत होने और प्रमाणित होने से है। इसक्रम में हम मानव आसानी से स्वीकार सकते है, मंगल मैत्री पूर्वक संवाद कार्य को परिवार से चलकर विश्व परिवार तक व्यवस्थित विधि से सम्पन्न कर सकते हैं। इसकी आवश्यकता सदा-सदा से सदा-सदा तक बनी ही रहेगी।

जनचर्चा में सामाजिक सूत्रों का उद्घाटन :

मानव की परस्परता में संवाद एक स्वाभाविक क्रिया है। आशय व तथ्यों के प्रति विश्वास जताना और परस्परता में स्वीकृति की एकरूपता को पहचान पाना ही, परस्परता में दृढ़ विश्वास का आधार होता है। जिसकी निरन्तरता पर भरोसा होता है यही विश्वास है। ऐसा विश्वास हर मानव की परस्परता में आवश्यक है ही। जिससे निरन्तर वांछित तथ्यो के साथ जीने की संभावनाओ को सूत्रित कर देता है। यही समाज का सूत्र भी है इसी जनसंवाद विधि से, अध्ययन विधि से, परीक्षण विधि से हम विश्वास करने योग्य हो जाते है। जिस आशय से संवाद करते है उन उन सूत्रों से अवगत होना बन जाता है। उसके अनन्तर प्रमाणित होना भी बन जाता है। प्रमाणित होने की इच्छा सर्वमानव में निहित है ही।

व्यवहार सूत्रों को प्रमाणित करना उद्देश्य है उसके मूल में मानव की परस्परता में ही व्यवहार होना पाया जाता है। सम्पूर्ण व्यवहार और कार्य मानव मानव के साथ और प्रकृति के साथ करता है। इन सबका फल परिणाम मानव व्यवस्था में अपनी पहचान को स्थापित करना ही है। यही स्वराज्य व्यवस्था का सूत्र है। इस प्रकार हम अपने वैभव को अर्थात मानव में, से, के लिए होने के प्रमाण को व्यवस्था में, व्यवहार में प्रमाणित करना

देखा गया है। ऐसे प्रमाण के साथ हर मानव जागृति के फलन में, समझदारी मे ही समझदारी की महिमा के रूप में अथवा फलन के रूप में समाधान सम्पन्न हो जाता है यही संवाद का प्रयोजन है।

जनचर्चा में सहअस्तित्व की अपेक्षा :

जनसंवाद के मूल में एक से अधिक व्यक्तियों का होना सर्वविदित है। चर्चा यदि किसी झाड़, पत्थर के साथ करते हैं तब आदमी के संतुलन के बारे में सोचना बनता है। ऐसे सोचने में ऐसा भी देखा गया है झाड़, पत्थर, इमारतो के साथ चित्र, मूर्ति के सामने जितनी भी प्रार्थना की जाती है वह सब पूजा पाठ के नाम से पहचाना गया है। वार्तालाप जो झाड़ पत्थर के साथ करता है यह सब प्रलाप कहलाता है। व्यक्ति में प्रलाप का पहचान, मानव में रोगी मानसिकता के रूप में पहचाना है। वह भी आयुर्वेद के अनुसार अति त्रिदोष होने से प्रलाप करता है ऐसा लिखा है। देखने में भी ऐसा लगता है। अज्ञान से भी प्रलाप होता है।

हर मानव अपने को रोगी होना स्वीकारता नहीं है। स्वस्थता की अपेक्षा सबमें निहित है। स्वस्थता का तात्पर्य स्वस्थ मानव शरीर के द्वारा जागृति प्रमाणित होना है। शरीर के द्वारा प्रमाणित होने का तात्पर्य परिवार व्यवस्था में प्रमाणित होना और समग्र व्यवस्था में प्रमाणित होना है।

इससे यह पता चलता है मानव संवाद मानव के साथ ही सार्थक होना पाया जाता है। इसी बीच कुछ ऐसी भी घटना देखी गई हैं कि जीव जानवरो के साथ भी मानव अपना सम्भाषण करता है। इस संवाद में स्वयं को बोलना होता है और उसके उत्तर स्वयं ही स्वीकार लेना होता है। इस विधा में ऐसा भी देखा गया है मानव ने जो कहा उसके आधार पर उत्तर स्वीकारा गया। जैसे तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली, गाय, घोड़ा, बाघ, भालू सब के साथ मानव अपने संकेतो को प्रसारित करता है इसके बदले में वह संकेतों के अनुसार अनुकरण कर दिया उसे सार्थक मान लेते हैं। मानव के संकेतो को जीव जानवर ग्रहण करते हैं निष्कर्ष निकलता है कि सार्थक संवाद मानव मानव के ही साथ कर पाता है इसे भली प्रकार देखा गया है। दूसरे किसी से सार्थक हो ही नहीं सकता है। मानव में यही विशेषता है समझने और फल परिणाम में एकरूपता आ जाती है यही समाधान है। समाधान के लिए सम्पूर्ण जन चर्चा है।

जनचर्चा में वास्तविकता को परखने की विधि यथार्थता को उद्‌घाटित करने की विधि, सत्यता को स्वीकारने की विधि :

मानव संवाद में अध्ययन में वस्तु कैसी है इस बात को बोध कराने की अपेक्षा स्पष्ट हुई है मानव जब परस्परता में संवाद, अध्ययन कर पाता है उक्त आशय के अर्थ मे ही होना पाया जाता है। यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता ही अध्ययन के लिए सर्व मुद्‌दा है। इन मुद्‌दों पर जनचर्चा होना अर्थात मानव में परस्परता में संवाद होते आया है। सहअस्तित्व वादी विधि से वास्तविकता को परखने की अर्थात जांचने की विधि स्पष्ट है वस्तु कैसी है इसे अध्ययनगम्य, बोधगम्य, अनुभव-गम्य होना ही परखने का मतलब है। क्यों, कैसे का उत्तर पाना ही समाधान है। हम सम्पूर्ण संवाद समाधान के लिए ही करते हैं। व्यापक वस्तु में एक-एक वस्तु है यही मूलतः सहअस्तित्व है। सहअस्तित्व में सम्पूर्ण इकाईयां चार अवस्थाओं में दृष्टब्य है। यह पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था के रूप में है। ज्ञानावस्था में मानव ही यह सब अध्ययन करने के लिए उत्सवित है प्रयत्नशील है। इन प्रयत्न में संवाद भी एक प्रयत्न है। प्रयत्न का तात्पर्य प्रयोजनो को पहचानने के लिए किया गया कायिक-वाचिक मानसिक श्रम है। इससे स्पष्ट है कि हम प्रयोजनो को पहचानना ही चाहते हैं मानव का प्रयोजन जीवनाकांक्षा मानवाकांक्षा को प्रमाणित करना है। जागृति पूर्वक ही वास्तविकता को हर अवस्था और पदों में पहचाना जाता है। पद चार होना स्पष्ट है प्राण पद, भ्रान्ति पद, देव पद, दिव्य पद। इनमे से प्राण पद में पदार्थ और प्राण अवस्था के संयुक्त कार्यकलापो का अध्ययन है। इस अध्ययन में इन की परस्परता में पूरकता विधि प्रभावशील रहना पायी जाती है। पूरकता के आधार पर सभी पद प्रतिष्ठा यथास्थिति रूपी अवस्थाएँ होना दृष्टव्य है इसी तथ्य के आधार पर वस्तु कैसा है यह बोध होना आवश्यक है।

पदार्थावस्था की सम्पूर्ण वस्तुओं में मूलतः परमाणु है हर परमाणु अपने त्व सहित व्यवस्था है। और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है। यही मूलतः वस्तु कैसा है का उत्तर है क्योंकि हर वस्तु अपने त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करती है यही यथार्थता है यही सभी पदो में दृष्टब्य है। त्व सहित व्यवस्था के क्रम में हर वस्तु स्वभाव गति में होती है मानव की स्वभाव गति जागृति पूर्वक ही स्पष्ट होती है। हर मानव अपनी स्वभाव गति में होने के आधार पर अध्ययन और अध्ययन करने योग्य होता है। हर वस्तु की त्व सहित व्यवस्था के रूप में पहचान ही वास्तविकता है। मानव अपने को

मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में पहचानना वास्तविकता है। अवगत रहना आवश्यक है। अवगत होने का तात्पर्य आवश्यकीय पद्धति, प्रणाली से विदित रहने से है। ऐसे अवगत होने के मूल में सहअस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान मूल वस्तु के रूप में पहचाना गया है। इसके विधिवत अध्ययन चलते हर परिस्थिति में, हर आयाम कोण में विधिवत प्रस्तुत होना बन जाता है जिससे जागृति और जागृति की महिमा प्रमाण में प्रस्तुत हो जाये। यथार्थताएँ यही है। मानव व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना यथार्थता है। स्वभाव गति वास्तविकता है। सत्यता अपने स्वरूप मे सहअस्तित्व विधि से नित्य वर्तमान ही है। इन्ही सत्यता के आधार पर यथार्थता वास्तविकताएँ निरन्तर उदयमान प्रकाशमान है। इसे समझने का अधिकार केवल मानव में ही है। इसे पूर्णतया हृदयंगम कराने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत है।

जन चर्चा में मानवाकाँक्षा का प्रबल स्थान :

सर्वमानव संवाद करने योग्य इकाई होना सुस्पष्ट हो चुका है। संवाद का अंतिम लक्ष्य मानवाकाँक्षा का पहचान होना और उसे प्रमाणित करना ही है। मानवकाँक्षा के स्थान पर समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व ही प्रमाण है। इसे प्रमाणित करना मानव में, से, के लिए परम आवश्यक है। मानव सदा-सदा अपने में सन्तुष्ट होने के अर्थ मे सारा संवाद और अध्ययन करता है कार्य और व्यवहार भी करता है। पाने की स्थली मे रिक्त रहने के स्थान पर ही लक्ष्य के अर्थ मे संवाद प्रबल कारण होना पाया जाता है। सभी देशकाल परिस्थिति में सदा-सदा से मानव लक्ष्य अनुवेषी रहा है। यही एक महत्वपूर्ण सूत्र मानव मन में घर किये आया है। इसी सूत्र के आधार पर मानव अपने को अध्ययन मे लगाता है फलस्वरूप संवाद भी करता है। संवाद और अध्ययन के आधार पर ही निष्कर्ष निकलता है। जब कभी भी निष्कर्ष निकलता है तब मानवकाँक्षा अथवा मानव लक्ष्य से सूत्रित होना होता है। जैसे कोई भी संवाद अध्ययन, समाधान तक पहुँचने के पहले तृप्ति बिन्दु मिलता नहीं है। अतृप्ति स्वयं पुनः शोध का कारण बना। इससे यह पता चलता है शोध के अनन्तर शोध, गम्य स्थली तक पहुँच सके। अतएव निष्कर्ष यही है जनचर्चा अथवा संवाद, विमर्श, विश्लेषण, विवेचनाएँ, समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व से सूत्रित होने से ही है इसे सार्थक रूप पहचान करने के लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रस्तुत है।

जनचर्चा में मानवीयता पूर्ण योजनाओं की स्वीकृतियाँ :

जागृतिपूर्ण मानव मानवीयता पूर्ण पद्धति से ही योजना, कार्ययोजना और व्यवहार योजना को सार्थक बना पाता है। सार्थकता का मूल बिन्दु अर्थात मूल स्वरूप मानवीय व्यवस्था में भागीदारी करना ही है। मानवीय व्यवस्था अपने मे स्वराज्य व्यवस्था ही है जिसकी आवश्यकता सदा से बनी है। मानव अपने मे जागृति के क्रम मे ही ज्यादा देर लगाया है। जागृति क्रम मे असंतुष्टि हर मंजिल में प्राप्त होने के आधार पर जागृति अविश्यंभावी हो गई है।

जागृति पूर्वक ही मानव मानवीय व्यवस्था को अपनाया करता है अन्यथा भ्रमित रहता है। भ्रमित रहने तक स्वयं अव्यवस्थित रहता है अन्य से व्यवस्था की अपेक्षा करता है। स्वयं समस्या को प्रसवित कर देता है अन्य से समाधान चाहता है यही भ्रम कहलाता है। भ्रमवश मानव परेशान होता है परेशानियों से मुक्त होने की अपेक्षा हर समस्याग्रस्त मानव में निहित है। इन्हीं आधारों पर जागृति अवश्यंभावी हो गई है।

शुभ संकेत यही है मानव को जागृति स्वीकार होती है भ्रम स्वीकार नहीं होता है। जागृति के अनन्तर ही हम मानव सदा-सदा समाधान परम्परा के रूप में प्रमाणित हो पाते है। ऐसी शुभ घटना के लिए सूचना के रूप में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद मानव कुल के लिए प्रस्तुत है।

जनचर्चा में उत्सवो की परिकल्पना :

हर मानव बारम्बार उत्सवित होने की अपेक्षाओ को अपने में समावेश कर लिया है। उत्सव का तात्पर्य उत्साह पूर्वक, उत्साह का तात्पर्य थोड़े प्रयत्नो के साथ साहसिकता पूर्वक अथवा धैर्य और प्रशस्त प्रक्रिया पूर्वक, मानव लक्ष्य के लिए, समझदारी के लिए किया गया प्रयास, यही उत्सव का तात्पर्य है। ऐसे उत्सव बारम्बार होना ही अभ्युदय है। अभ्युदय का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान से है। मानव को सदा ही सोचने की आवश्यकता है। इसी आधार पर कल्पनाशीलता और कर्म स्वतंत्रता मानव के लिए वरदान माना गया है। इसी कल्पनाशीलता कर्म-स्वतंत्रता वश और स्पष्टता की ओर गति हुई है। स्पष्टता ही विज्ञान विवेक के रूप में प्रमाणित होती है। सहअस्तित्व बोध और अनुभव इसी क्रम में सम्पन्न हुई है इसलिए मानव सदा सदा से अभ्युदयशील है ही।

उत्सवों का आयोजन सदा-सदा से ही रहा है। ऐसे उत्सव इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ तक भय और प्रलोभन, अपराध और श्रृंगारिकता की सीमा में सिमटता गया है।

अपराध सामाजिक सूत्रों से सूत्रित नहीं हो पाता है साथ में श्रृंगारिकता भी सामाजिक सूत्रों से सूत्रित नहीं हो पाती है इस इक्कीसवीं सदी तक हम मानव श्रृंगारिकता और अपराध को रोमाँचकता का आधार मानते आये हैं। रोमांचकता अपने आप में उत्साह माना जाता है। जबकि उत्सवित होने का तात्पर्य वास्तविकता यथार्थता सत्यता को उद्घटित करना ही है। इन सत्यो की कसौटी के आधार पर अपराध और श्रृंगारिकता का मूल्याँकन कर पाते है। इन दोनों के साथ उत्सवो को हम जोड़ते रहे इसी के साथ भय प्रलोभन को जोड़ते रहे। यह सभी प्रयास असामाजिकता के रूप में प्रदर्शित हुई। अन्ततः प्रयासो की निरर्थकता मान लेने की स्थली पर पहुँच रहे हैं। इसका निराकरण यथार्थ रूप में मानव की स्वभाव गति, समझदारी, समाजगति, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी ही है। इस प्रकार यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता ही उत्सव का आधार है।

जनचर्चा में क्रीड़ा विनोद की परिकल्पना :

भ्रमित मानव परम्परा में क्रीड़ा विनोद व्यंग विधाओ मे चर्चा होना, हँसी मजाक से अन्त होना अथवा द्वेष, गाली, गलौच में अन्त होना पाया जाता है। सार्थकता की विधि से क्रीड़ा विधा को सोचने पर और चर्चा करने पर यही निकलता है क्रीड़ा विधि स्वास्थ्य वर्धन के लिए अनुकूल कार्यक्रम है क्रीड़ा को व्यापार से जोड़ने पर भी मानव का हित नहीं हो पाया। विनोद नौटंकी भी व्यापार से जोड़ा गया इससे भी मानव का उपकार नहीं हुआ। यह तो पहले से ही मानव को विदित है व्यापार शोषण का ही कार्यक्रम है। विनोद नौटंकी, मंचन, कला, प्रदर्शन आज की ही विधि में टी.वी. फिल्म इन सभी विधा में आदमी व्यापार से जुड़कर बहुत कुछ प्रस्तुत किया है। उक्त प्रयासो से जितने भी माध्यमो से प्रस्तुत हुआ। यह सब का सब सर्वाधिक रूप में अपराध और श्रृंगारिकता के रूप में प्रस्तुत हुआ है। श्रृंगारिकता भोग उन्माद के अर्थ में मानव के सम्मुख पेश है मानव जाति में इस इक्कीसवीं सदी के पहले वर्ष तक सर्वाधिक लोग इसके दीवाने होते हुए देखे गये। इसका मतलब हम मानव की सर्वाधिक मानसिकता भोग उन्माद में ही लिप्त रहना पाया गया है। इसके लिए संग्रह सुविधा का उत्पादन शनैः शनैः बढ़ गया इसके बावजूद कहीं ठौर नहीं मिल पाया। इस बीच मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद प्रेरणा देने में प्रस्तुत हो गई। हर नर-नारी अपनी प्रतिभा को स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी में संगीत और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वावलम्बन, व्यवहार में सामाजिक होने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। मानव अपने लक्ष्य को पहचानने की विधि और उसके सार्थक बनाने की सम्पूर्ण विधियों को प्रस्तावित किया

है । इससे हम अच्छी तरह से लक्ष्य तक पहुँच ही सकते है । जो छ: प्रकार की महिमा मानव को लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है । आगे जितने भी प्रदर्शन माध्यमों से मानव कुल के हित में प्रस्तुत होता है उसका आधार मानव महिमा ही होना आवश्यक है ।

मानव महिमा को जितना ज्यादा हम चित्रित कर पायेंगे कला और साहित्य का अपने आप में लक्ष्य तक पहुँचने की विधि को स्पष्ट करना पाया जाता है । अतएव जनचर्चा में इस बात की एक अच्छी विचारणा आवश्यक है । कामोन्माद भोगोन्माद के लिए चर्चा को अर्पित किया जाये या समाधान समृद्धि के लिए अर्पित किया जाये । इस तर्क विधि से समाधान समृद्धि के लिए तर्क विधि सार्थक होना स्पष्ट हो जाता है ।

मानव महिमा के छ: प्रकार सहज स्वरूपो को स्पष्ट किया है । यह हर मानव को स्वीकार होता ही है । इसे हमे जीने की विधि तक प्रमाणित होने तक एक सुगम संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, संगीत, कविता प्रसंगो में अच्छी तरह से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है । यह अभिव्यक्ति अर्थात व्यवहारात्मक जनवाद में किया गया अभिव्यक्ति सभी सकारात्मक मुद्दो की ओर ध्यान आकर्षण कराने का प्रयास है । सकारात्मकता सहज रूप में मानव को स्वीकार होता ही है । उसके साथ लक्ष्य, लक्ष्य के साथ दिशा, दिशा में गति पाने का कार्यक्रम शेष रह जाता है इसे मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद स्पष्ट करने का प्रयास किया है इसे हर नर-नारी पूरा अध्ययन कर जाँच सकते है । अभी प्रस्तुत मुद्दा विनोद के अर्थ में सम्पूर्ण साहित्य और कला को प्रस्तुत करने की कोशिश हुई है । इसके स्थान पर सार्थक विधि को अपनाना अति आवश्यक है ।

विनोद अपने स्वरूप में विनयपूर्वक स्वीकृति विधि से प्रसन्नता पूर्वक की गयी प्रस्तुतियाँ हैं । मानव के प्रसन्न मुद्रा, भंगिमा, अथवा अंगहार सहित प्रस्तुत होने पर जितने भी देखने वाले होते हैं उनमें भी प्रसन्नता की उमंग आती है । यही विनोद की सार्थकता है । ऐसे सार्थक विनोद की ओर ध्यानाकर्षण होने से मानव अपने आप में सुन्दर विधि से वांछित सार्थक सम्प्रेषित करने के लिए शक्तिशाली कार्यक्रम है । इस ढंग से जागृति विधि से सार्थकता की ओर ध्यानाकर्षण कराना विनोद का तात्पर्य है और स्वास्थ्य संवर्धन के लिए क्रीड़ा समुच्चय को पहचानना आवश्यक है इस पर सुन्दर संवाद की आवश्यकता है ही ।

जनचर्चा में मूल्याँकन का स्थान और प्रयोजन :

यह तथ्य हमें विदित हुआ है जनमानस संवाद के लिए है ही, यह हर मानव में

कमोवेश सर्वेक्षित है। हर मानव संवाद किसलिए करता है, अपनी पहचान बनाने के लिए करता है अथवा ज्ञानार्जन करना है कराना है। इन्हीं आशयों के आधार पर मानव परस्परता में जन संवाद होना पाया जाता है। हर मानव सार्थकता को चाहता ही है, सार्थकता को सुनिश्चित करना एक आवश्यकता है।

मूल्याँकन मानव परम्परा की एक अनिवार्य प्रक्रिया प्रणाली है । हम मानव सुविधाजनक विधि से सुविधा के लिए मूल्याँकन करना चाहते हैं। सुविधा का मतलब भौतिक सुविधा न होकर मानसिक सुविधा से है। मानसिक सुविधा का तात्पर्य समाधान तक पहचान होना है। मानव और समाधान, मानव और न्याय, मानव और नियंत्रण, मानव और मानव लक्ष्य के आधारों पर मूल्याँकन होता है । इस मूल्याँकन का आधार मानव लक्ष्य को पहचाना जाता है। इसी में मानव लक्ष्य के आधार पर होना, बाकी विधाएँ उसमें समा जाती है । मानव का जाँच समझदारी से व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना, उसके फल परिणाम समझदारी जाँच पाना, यही मूल्याँकन विधि है ऐसा मूल्यांकन हर मानव की अपेक्षा है। इसी के साथ हर वस्तुओं का मूल्यांकन उपयोगिता के आधार पर कर पाना यही सम्पूर्ण मूल्यांकन का तात्पर्य है। ऐसा मूल्यांकन मानव परम्परा में कितना महत्वपूर्ण है इसे समझ सकते है। समाज में मूल्यांकन एक सहज धारा है क्योंकि मानव परम्परा में एकता और अखंडता का ओतप्रोत प्रमाण और व्याख्या है। व्याख्या के निचोड़ में मूल्याँकन स्वरूप बन जाती है। सार रूप में मूल्यांकन हर मानव को स्वीकार होता है इसलिए मानव की परस्परता में मूल्यांकन एक अनुपम कार्यक्रम है।

जनचर्चा में समीक्षा का स्थान और आवश्यकता :

समीक्षा अपनी परिभाषा में पूर्णता के अर्थ में निरीक्षण, परीक्षण और उसका उद्घाटन अर्थात अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा और प्रकाशन है। यह प्रक्रिया विगत में बीती हुई परम्परा का ही वर्णन है अथवा घटनाओ का वर्णन है । इसका सुस्पष्ट स्वरूप मानव परम्परा में घटित संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था की समीक्षा हो पाती है। समीक्षा में मूल्याँकन का अर्थ समाहित रहता ही है। मूल्यांकन में सार्थकता-असार्थकता को स्पष्ट देखना बना रहता है। सार्थकता का स्वरूप परम्पराओं में अभी तक ज्ञान विज्ञान के रूप में पहचाना गया है इसी के साथ विवेक को पहचानने का प्रयास हुआ है। ऐसे प्रयास का मूल स्वरूप विवेक और संस्कृति सभ्यता विधि व्यवस्था के साथ सार्थक अनुबंध और प्रमाण

के अर्थ में सभी समीक्षा होगी।

विगत की समीक्षा की ओर चलने पर पता लगता है, ज्ञान विज्ञान विवेक संस्कृति सभ्यता विधि व्यवस्था के साथ प्राकृतिक विधि से अथवा नियति विधि से समीक्षा अनुबंधित नहीं हो पाई जबकि अनुबंधित रहना आवश्यक है। यह सब स्पष्ट रहना आवश्यक है। स्पष्टता की आकांक्षा सदा सदा से बनी हुई है। यही मुख्य मुद्दा है। इसमें स्पष्ट होना है, नहीं होना है पूछने पर स्पष्ट होने के पक्ष में मानव तैयार होता है पहले स्पष्ट न होने के कारणों पर ध्यान देना आवश्यक है। इस मुद्दे पर सुस्पष्ट स्पष्टीकरण है भौतिकवादी विधि से मानव सुविधा-संग्रह के चक्कर में पड़कर व्यक्तिवादी हो गया, दूसरा आदर्शवादी विधि से भक्ति-विरक्ति में समर्पित होकर व्यक्विादी हो गया दोनों विधि से परिवार, समाज व्यवस्था और व्यवहार का तालमेल स्वरूप निष्पन्न नहीं हो पाई। इसलिए आगे शोध करने के लिए प्रयत्न किये। शोध से यही स्पष्ट हुआ मानव समझदार हो सकते हैं इसके लिए अध्ययन विधि ही पर्याप्त है। अध्ययन विधि से जो स्वीकृतियाँ हुई रहती है बोध रूप में उसे प्रमाणित करने की प्रवृति स्वयं स्फूर्त होती है। फलस्वरूप हर मानव जागृत हो जाता है। जागृत होने के प्रमाण में ही स्वभाव गति प्रतिष्ठा मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित हो जाती है। इस विधि से मानवीय संस्कृति सभ्यता विधि व्यवस्था में ज्ञान विज्ञान विवेक का संगीतीकरण होना प्रमाणित होता है।

प्रस्तावित मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद से जागृति पूर्वक जीना सहज हो जाता है। इसलिए परिवार व्यवस्था में जीना बन जाता है इसकी आवश्यकता हर मानव को स्वीकार है ही। इसलिए यह एक आवश्यकता है। अखण्ड समाज में भागीदारी-समझदारी पूर्वक सम्पन्न होना स्वीकार होता है।

मूल्यांकन पूर्वक ही हर मानव आगे के कार्यक्रम को सुनिश्चित करता है। सार्थक बिन्दुएँ वर्तमान में स्पष्ट होते हैं। निरर्थक बिन्दुएँ समीक्षित होकर विगत हो जाते हैं। जो विगत हो गये वे सब वर्तमान में जो परिपूर्णता के रूप में प्रमाणित होना होता है उसमें विलय हो जाते है। जैसे सम्पूर्ण गलतियाँ समाधान में विलय होते हैं। इसी प्रकार से सार्थकता में असार्थकता विलय हो जाते हैं। यही समीक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

जनचर्चा में अभय समाधान की पुष्टि और इसकी आवश्यकता :

भय मुक्ति की अभिलाषा मानव कुल में सदा सदा से रहा है। इसे ऐसे परीक्षण

किया जा सकता है हर आयु वर्ग का आदमी भय नहीं स्वीकारता है चाहे शिशु हो, चाहे कौमार्य हो, चाहे नर हो, चाहे नारी हो, सबको भय मुक्ति चाहिये। यह भी साथ में देखा गया कि दूसरे को सब भयभीत कराते भी है। इस विधि से मानव कुछ असमंजस सा दिखाई पड़ता है। असमंजसता का मतलब यही है स्वयं चाहता न हो दूसरे के लिए तैयार कर प्रस्तुत कर देता है जैसे सामरिक तंत्र और द्रव्य। कोई देश अपने देश के सुरक्षा कर्मियों पर इसका प्रयोग नहीं चाहता पर इसे तैयार करके दूसरे को बेच देते है यही असमंजसता है। इसी प्रकार से कोई सज्जन मिलावट का चीज खाना नहीं चाहते किन्तु मिलावट कर बेच देते हैं। असमंजसता यही है। प्रदूषण को कोई मानव झेल नहीं पाता है, किन्तु प्रदूषण पैदा कर देता है। इसी क्रम में मानव औरों से अपशब्दों का प्रयोग कर देता है ये सब असमंजसता की गिनती में आते हैं। मानव अपने आप में शान्त, निश्चित, अभयशील, रहना ही चाहता है।

भय, प्रलोभन का दूसरा पहलू है। प्रलोभन को मानव स्वीकार लेता है। भय को नहीं चाहता है इसी क्रम में मर्यादा भंग होना पाया जाता है। फलस्वरूप मानव की परस्परता में विरोधाभास तैयार हो जाता है ऐसा विरोधाभास गहराने से मानव का सूझ-बूझ, देख-रेख, भाव-भंगिमा बदल जाती है सशंकित हो जाता है, सशंकित होना ही सुरक्षा में खतरा है। अभी तक हम इसी प्रकार संकट को झेलते रहे हैं।

अभी हम मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद को पाकर अर्थात् सहअस्तित्ववादी नजरिया से सोच, विचार, निश्चयन, सुनिश्चयन के आधार पर जीना शुरू किये हैं। इससे पता चला मानव लक्ष्य मूलक विधि से सुरक्षित रहता है। सुरक्षा का अनुभव करता है क्योंकि भौतिकवाद के अनुसार रूचिमूलक विधि से सुरक्षा को पाना चाहते रहे और आदर्शवाद के अनुसार भक्ति विरक्ति को सुरक्षा का कवच मानते रहे इन दोनों विधि से प्रमाणित होना बना नहीं। सहअस्तित्ववादी नजरिये से सफल होना बन गया। क्योंकि मूल्यों के आधार पर लक्ष्य के अर्थ में जितने भी सोच विचार और समझ अपने आप में समाधान होना पाया जाता है। इसी तथ्य के आधार पर तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा करना बन पड़ता है। इसका स्पष्ट झाँकी यही रहा तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग स्वयं सुरक्षित होने का अनुभव करा देता है। अर्थ अपने में उक्त प्रकार से मानव के साथ वर्तमान रहता है। अर्थ का स्वरूप मन रूप में समाधान, तन रूप में क्रियाशीलता और व्यवहार, धन रूप में आहार, आवास, अलंकार, दूरदर्शन, दूरगमन, दूरश्रवण सम्बंधी वस्तुएँ और उपकरण। इन सब का सदुपयोग हो जाना अर्थ का सुरक्षा है।

सदुपयोगिता का स्वरूप, शरीर पोषण संरक्षण समाज गति के रूप में देखा गया है। मानव अपने में सुरक्षित होने का अनुभव तभी कर पायेगा। जब तन, मन, धन रूपी अर्थ को जब सदुपयोग कर पायेगा। उक्त तीनों प्रकार के अर्थ मानव ही परस्परता में उपयोग करता हुआ देखने को मिलता है। मानव अपने में सुरक्षा की चाहत को सदा से बनाए रखा किन्तु सुरक्षा के साथ होने का जो प्रमाण है वह दूर रह गया। हम ज्यादा से ज्यादा चाहत को ज्ञान मानकर चलते रहे। जबकि होना रहना ही ज्ञान का प्रमाण है यह तो सुनिश्चित हो गया है। सहअस्तित्ववादी मानसिकता पूर्वक ही समाधान और सुरक्षा पाकर सुख, शान्ति का अनुभव कर पाता है। इस तथ्य को भली प्रकार से हम जीकर देखे हैं। यह सार्थक हो जाता है।

भूमि स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यं यातु शुभोदयम् ।।

ग्रंथ

''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन''
बनाम
''मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद''

दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)
★ मानव व्यवहार दर्शन
★ मानव कर्म दर्शन
★ मानव अभ्यास दर्शन
★ मानव अनुभव दर्शन

वाद (सहअस्तित्ववाद)
★ व्यवहारात्मक जनवाद
★ समाधानात्मक भौतिकवाद
★ अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन)
★ व्यवहारवादी समाजशास्त्र
★ आवर्तनशील अर्थचिंतन
★ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

संविधान
★ मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

परिभाषा
★ परिभाषा संहिता

अन्य
★ विकल्प
★ अध्ययन बिंदु
★ आरोग्य शतक
★ जीवन विद्या योजना
★ मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना
★ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना

:: मध्यस्थ दर्शन आधारित उपयोगी संकलन ::

परिचयात्मक संकलन

★ जीवन विद्या एक परिचय

सहयोगी संकलन

★ संवाद - भाग-1

★ संवाद - भाग-2

पुस्तक प्राप्ति संपर्क एवं निःशुल्क PDF डाउनलोड के लिए :-

Website : www.madhyasth-darshan.info

Email. : books@madhyasth-darshan.info